सुविधि ज्ञान चन्द्रिका प्रकाशन संस्था

का

पुष्प क्र. : 24

दव्वसंगह

मूल ग्रन्थकर्त्ता

प. पू. आचार्य 108 श्री नेमिचन्द्र जी महाराज

संस्कृत टीकाकार

प. पू. आचार्य 108 श्री प्रभाचन्द्र जी महाराज

अनुवादिका

पू. आर्यिका 105 श्री सुविधिमती माताजी

सम्पादक

प. पू. युवामुनि 108 श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्राप्ति स्थान :

भरतकुमार इंदरचन्द पापड़ीवाल
सिडको, एन 9, ए 115 – 49/4, शिवनेरी कॉलोनी
औरंगाबाद, महाराष्ट्र – 431 003

पुनर्प्रकाशन हेतु अर्थ सहयोग : 30 रु.

आवृत्ति क्र. – 1

प्रकाशन काल सितम्बर, 2000

प्रतियाँ 1000

समर्पण

जिन का परम आशीर्वाद, मम साधना जीवन का
बल है, जिन की मंगलमयी प्रेरणा मेरी रचना शक्ति
का एकमात्र दृढ़ सम्बल है, ऐसे, ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त,
मानवता के अग्रदूत, साधना के मेरु, बहुआयामी
व्यक्तित्व के स्वामी, निर्द्वन्द्व-निस्पृही साधक,
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अध्यात्म के सजग प्रहरी,
अनियत-आहार विहारी, समता की प्रतिमूर्ति, लब्धकीर्ति,
प.पू. अचिन्त्य प्रज्ञाशक्ति धारक,
युवामुनि 108 श्री सुविधिसागर जी
महाराज के परम पुनीत कर कमलों
में
सादर समर्पित ।

आशीर्वाद

ग्रंथ निर्ग्रंथों के चक्षु हैं; यही कारण है कि आचार्य कुन्दकुन्द देव ने कहा है कि "**आगम चक्खू साहु**"। ग्रंथ निर्ग्रंथ संस्कृति के आभूषण हैं। श्रमण संस्कृति की सुरभि को दिग्दिगन्त में प्रसारित करने वाले अनुपम कुसुम हैं, ग्रंथ। भव्य जीवों की आत्मशक्ति को जागृत करने वाले दिव्यमन्त्र हैं, ग्रंथ। ग्रंथों की शरण में गये बिना कषायों की ग्रन्थियाँ विलय को प्राप्त नहीं होती। नव देवताओं में जिनवाणी को भी एक देवता माना जाता है। देव-शास्त्र-गुरु जो कि सम्यग्दर्शन के आयतन हैं, उन में जिनवाणी को द्वितीय स्थान प्राप्त है। अत: ग्रंथों की सुरक्षा एवं प्रकाशन में प्रत्येक भव्य को रुचि लेनी चाहिये।

प्राचीन ग्रंथों के संरक्षण व प्रकाशन कराने के कार्य में मेरा सहयोग करने वाली, गुरुभक्त, आर्यिका सुविधिमती माताजी ने **श्री नेमिचन्द्राचार्य** विरचित "**द्रव्यसंगह**" ग्रंथ की आचार्य प्रभाचन्द्र विरचित टीका का अनुवाद कर के अत्यन्त प्रशस्त कार्य किया है।

माताजी श्रुतसेवा कर के अचिन्त्य श्रुतज्ञान को प्राप्त करें तथा उस श्रुत ज्ञान के माध्यम से उन्हें केवलज्ञानोत्पत्ति हो, यही मेरा आशीर्वाद है। ग्रंथ के प्रकाशक, द्रव्यदाता आदि समस्त परोक्ष एवं अपरोक्ष सहयोगियों को भी मेरा आशीर्वाद है।

यह ग्रंथ यावच्चन्द्र दिवाकर भव्य जीवों का मार्गदर्शन करता रहे, यही मेरी मंगल कामना है।

1 - 9 - 2000
रांची

मुनि सुविधिसागर

अनुवादिका की कलम से

प. पू. परम गुरुदेव, युवामुनि 108 श्री सुविधिसागर जी महाराज का कथन है कि – **जिनालयों का जिर्णोद्धार करना जितना आवश्यक है, उतना ही प्राचीन ग्रंथों का संरक्षण व प्रकाशन आवश्यक है।** गुरुदेव विहार करते हुए जहाँ भी पहुँचते हैं, वहाँ वे किसी ग्रंथ का अन्वेषण अवश्य करते हैं।

1999 का चातुर्मास बिहार प्रान्तीय आरा नगरी में हुआ था। चातुर्मास के कुछ दिन पूर्व वहाँ की सुप्रसिद्ध संस्था **जैन बाला विश्राम** में संघ विराजमान था। वहाँ वयोवृद्ध विद्वान् श्री गोकुलचन्द जैन गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे। चर्चा के समय उन के द्वारा सम्पादित परन्तु अननुवादित ग्रंथ **द्रव्यसंग्रह** का उल्लेख उन्होंने किया। गुरुदेव ने उन से ग्रंथ की प्रति प्राप्त कर के प्रतिलिपि तैयार की।

संघीय स्वाध्याय के रूप में इस ग्रंथ का 2/3 बार स्वाध्याय हुआ। गुरुदेव ने ग्रंथ का राष्ट्रीय भाषा में अनुवाद करने का आदेश मुझे दिया। मैं गुरुदेव के आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन का बल पा कर यह कार्य करने का साहस कर सकी।

प्रभाचन्द्राचार्य विरचित टीका यद्यपि अत्यन्त संक्षिप्त है, तथापि टीका के माध्यम से ग्रंथ के हार्द तक पहुँचना आसान हो जाता है। इस टीका की यह विशेषता है कि द्रव्यसंग्रह के अनेक पाठान्तरों से पाठक परिचित हो जाता है। यही नहीं, ग्रंथ में आगत समस्त पारिभाषिक शब्दों की संक्षिप्त परिभाषा टीका में पायी जाती है। अतः टीका अत्यन्त उपयुक्त है।

मैं संस्कृत भाषा की विशेष ज्ञाता नहीं हूँ, अतः सम्भव है कि कुछ त्रुटियाँ हो गयी हो, प्रबुद्ध पाठक इस विषय में मुझे अवगत कराने का कष्ट करें।

यह अनुवाद यदि पाठकों का श्रुतज्ञान विकसित करने में सहयोगी बन सका, तो मुझे अत्यन्त हर्ष होगा।

समस्त सहयोगियों को मेरा साधुवाद।

आर्यिका सुविधिमती

प्रस्तावना

आ. कुन्दकुन्द का स्पष्ट उद्घोष है कि **दंसण मूलो धम्मो**। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग का प्रथम चरण है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुए बिना जीव सच्चा धार्मिक नहीं हो सकता। जिन प्राणियों को कषायों की लपटें धू-धू कर जला रही हैं, उन के लिए सम्यग्दर्शन परम शीतलता है। जो जीव विषय रूपी भुजंग से दंशित हैं, उन के लिए सम्यग्दर्शन नागदमणि है। जन्म-जरा-मरण रूपी रोग को नष्ट करने के लिए सम्यग्दर्शन रामबाण औषधि है। सम्यग्दर्शन परम रत्न है। जिस जीव के पास सम्यग्दर्शन रूपी अनमोल निधि है, उसी जीव का जीवन सफल है तथा धन्य है।

आ. कुलभद्र कहते हैं कि -

वरं नरकवासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुतः।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य, निवासो दिवि राजते॥

[सार समुच्चय - 39]

अर्थात् : सम्यग्दर्शन सहित नरक में वास करना श्रेष्ठ है, किन्तु सम्यक्त्व हीन का स्वर्ग में निवास करना भी शोभा को प्राप्त नहीं होता।

ऐसे अचिन्त्य महिमावन्त सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए षड् द्रव्य, पंच-अस्तिकाय, सप्त तत्त्व और नव-पदार्थों पर सम्यक् श्रद्धान करना, परमावश्यक है।

सम्यग्दर्शन को परिभाषित करते हुए आ. कुन्दकुन्द लिखते हैं कि -

छ दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो॥

[दर्शनपाहुड - 19]

अर्थात् : छह द्रव्य, नव पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सप्त तत्त्व कहे गये हैं। उन के स्वरूप का श्रद्धान करने वाला जीव सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना चाहिये।

उन द्रव्यादिकों का समीचीन श्रद्धान तभी हो सकता है, जब उन के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होगा। द्रव्यों के या तत्त्वों के स्वरूप का प्रतिपादन करने के

लिए तत्त्वार्थसूत्र, पंचास्तिकाय आदि अनेक ग्रंथों की रचना हुई। **दव्वसंगह** ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय भी यही है।

ग्रंथ का नाम : प्रस्तुत ग्रंथ का नाम **दव्वसंगह** है। इस नाम की उद्घोषणा स्वयं ग्रंथकर्त्ता ने ग्रंथान्त में की है। यथा –

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदासुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥ 58॥

अर्थात् : अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा जो यह द्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथ कहा गया है, उसे शास्त्रज्ञ, समस्त दोषों से रहित मुनिनाथ शोधन करें।

यह ग्रंथ **द्रव्यसंग्रह** इस नाम से सुप्रसिद्ध है। मूल ग्रंथ में यद्यपि ग्रंथ का स्पष्ट नामोल्लेख किया गया है, तथापि समस्त हिन्दी–अंग्रेजी अनुवाद तथा ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका के साथ इस ग्रंथ के जितने संस्करण प्राप्त होते हैं, उस में **द्रव्यसंग्रह** नाम प्रकाशित किया गया है। प्राकृत ग्रंथों को भी प्राय: संस्कृत अथवा हिन्दी नाम से प्रकाशित करने की परंपरा कब से प्रारंभ हुई? यह अन्वेषणीय है। हाँ – यह सत्य है कि समयपाहुड, पवयणपाहुड, अट्ठपाहुड, तिलोयसार आदि अनेक ग्रंथ अपने संस्कृत नाम में ही आज लब्धप्रतिष्ठ हैं। अस्तु, वही सुप्रसिद्ध कृति अपने मूल नाम के साथ प्रकाशित हो रही है, यह अत्यन्त हर्ष का विषय है।

ग्रंथ का प्रतिपाद्य विषय : ग्रंथ का अन्त:परीक्षण करने पर यह सुस्पष्ट होता है कि ग्रंथकर्त्ता ने पंचास्तिकाय ग्रंथ का अनुसरण किया है। पंचास्तिकाय तीन अधिकारों में विभक्त है और यह ग्रंथ भी। तीनों अधिकारों का वर्ण्य विषय भी समान है, अत: इस ग्रंथ को **लघुपंचास्तिकाय** कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इस ग्रंथ का प्रथम अधिकार द्रव्याधिकार एवं पंचास्तिकायाधिकार है। इस अधिकार में जीव का लक्षण एवं उस के 9 अधिकारों का वर्णन सर्वप्रथम किया गया है। 14 गाथाओं में जीवद्रव्य का वर्णन करने के उपरान्त 13 गाथाओं में शेष अजीव द्रव्यों का वर्णन तथा अस्तिकायों का वर्णन किया गया है।

नवपदार्थाधिकार नामक द्वितीय अधिकार में कुल ग्यारह गाथाएं हैं। जीव और अजीव पदार्थ का कथन प्रथम अध्याय में किया गया है। अत: उन दोनों

को छोड़ कर आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन सात पदार्थों का वर्णन इस अधिकार में किया गया है। इस अधिकार की विशेषता यह है कि प्रत्येक पदार्थ के द्रव्य और भाव ये दो भेद कर के प्रत्येक की परिभाषा एवं उन के भेद-प्रभेदों का वर्णन सूत्र शैली में किया गया है।

अन्तिम 20 गाथाओं में मोक्षमार्ग का वर्णन किया गया है। तत्त्वार्थसूत्रकर्ता ने **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** इस सूत्र के माध्यम से मोक्ष के मार्ग का कथन किया है, उसी को प्रस्तुत ग्रंथकर्ता ने **सम्मद्दंसणणाणंचरणं मोक्खस्स कारणं जाणे** ऐसा प्रतिपादन किया है। यह त्रितयात्मक मोक्षमार्ग व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय से उन तीनों से युक्त एक शुद्धात्मा ही मोक्षमार्ग है। अतः मुमुक्षु के लिए आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ ध्येय है।

छद्मस्थ व्यक्ति को दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होता है। उस के द्वय-उपयोग केवलज्ञानी की तरह युगपद् नहीं होते।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के उपरान्त चारित्र मोक्षमार्ग का अनिवार्य हेतु है। उस के अभाव में मोक्ष होना संभव नहीं है। व्रत-समिति व गुप्तिरूप तेरह प्रकार का व्यवहार चारित्र है और आत्मा में रममाण हो कर सम्पूर्ण बाह्याभ्यन्तर क्रियाओं का निरोध करना निश्चय चारित्र है।

दोनों प्रकार के मोक्षमार्ग की सिद्धि के लिए ध्यान आवश्यक होता है। इस ग्रंथ में पदस्थ ध्यान के ध्येयभूत अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं का स्वरूप वर्णित है। अन्त में उत्कृष्ट ध्यान के लिए ग्रंथकार का कथन है कि – **अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं।**

इस प्रकार मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने के उपरान्त ग्रंथकर्ता ने अपने औद्धत्य का परिहार करते हुए कहा है कि "निर्दोष, पूर्ण श्रुतधर मुनिश्रेष्ठ, मुझ अल्पश्रुतधर नेमिचन्द्र मुनि द्वारा लिखे गये इस ग्रंथ का शोधन कर लेवें।"

इस प्रकार कुल 58 गाथाओं में संक्षिप्तरीत्या सम्पूर्ण आगम-अध्यात्म ग्रंथों का सार भरा हुआ है।

उल्लेखनीय है कि प्रथम और तृतीय अध्याय में ग्रंथकर्ता ने नयशैली का प्रयोग कर के ग्रंथ की प्रामाणिकता व विषय की विशदता को कायम किया है। शैली की सहजता, सरलता, लावण्यता सामान्य पाठक को भी अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ है।

सारांश रूप में इतना ही कथन करना पर्याप्त होगा कि इतने विशद अर्थ से परिपूर्ण, इतना लघुकाय एवं लोकप्रिय अन्य कोई ग्रंथ प्राप्त होना कठिन ही है।

अवचूरि टीका : अवचूरि का अर्थ सार या निचोड़ है। गाथाओं के अर्थ को संक्षिप्ततः प्रस्तुत किया गया है, अतः टीका का अवचूरि नाम सार्थक है। इस टीका के रचयिता कौन हैं? इस विषय में पूर्व प्रकाशित ग्रंथ के सम्पादित मौन हैं।

एक बार हजारीबाग के बाड़म बाजार दि. जैन मन्दिर में स्थित स्वाध्याय भवन का मैं अवलोकन कर रहा था। वहाँ मुझे 12-10-1967 का **जैनसन्देश** का शोधाङ्क प्राप्त हुआ। उस में पृष्ठ 7 से 13 तक पं. कैलासचन्द्र शास्त्री द्वारा लिखित **द्रव्यसंग्रह, उस के कर्त्ता और टीकाकार** शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया गया है। पृष्ठ 11 पर आ. प्रभाचन्द्र कृत संस्कृत वृत्ति के कुछ उद्धरण [गाथा 10, गाथा 30, गाथा 54 आदि के] दिये गये हैं; उन का प्रस्तुत कृति से मिलान करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यह टीका आ. प्रभाचन्द्र कृत ही है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि आ. प्रभाचन्द्र कौन थे? **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश** [पु. 3] में प्रभाचन्द्र नामक 9 श्रुतधरों का वर्णन मिलता है। परन्तु उन में कोई अवचूरि टीका के रचयिता हैं, ऐसा स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

आ. प्रभाचन्द्र कृत पंचास्तिकाय टीका भी है। उस की गाथा 26 एवं इस ग्रंथ की गाथा 2 की टीका का मिलान करने पर पूर्ण साम्यता दृष्टिगोचर होती है। इस से यह अनुमान करना उचित जान पड़ता है कि पंचास्तिकाय टीका के निर्माता आ. प्रभाचन्द्र ही इस टीका के रचयिता हैं। इन का समय वि. सं. 1319 है।

ग्रंथ के पाठभेद : दव्वसंगह की बृहत् टीका ब्रह्मदेव सूरि कृत है। उस टीका में ग्रंथ के पाठ का विशेष रूप से अवलोकन किया गया है। उस टीका के साथ इस टीका की तुलना करने पर अनेक पाठभेद प्राप्त होते हैं।

कुछ पाठभेद अत्यन्त सामान्य हैं। प्राकृत व्याकरण के विकल्पात्मक नियमों से उन की सिद्धि होती है। वे पाठभेद अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं करते। यथा –

1. धम्मोवएसणे – धम्मोवदेसणे।
2. हवइ – हवे।

3. विवहारा – ववहारा।
4. आयासो – आयासं।

कुछ पाठभेद अर्थ भेद की सूचना देते हैं। यथा –

1. झाणे झाऊण – झाणे पाउणदि। [गाथा – 47]
2. संति जदो ते णिच्चं – संति जदो तेणेदे। [गाथा – 24]
3. तं सम्मं परम चारित्तं – तं परमं सम्मचारित्तं। [गाथा – 46]

पाठभेदों की संख्या अधिक है। अतः प्रत्येक गाथा के नीचे प्राप्त पाठभेदों का उल्लेख किया गया है। इस से पढ़ने वालों को काफी सुविधा होगी तथा यह प्रयत्न शोधकार्य के लिए भी सहायक बन सकेगा।

ग्रंथ की भाषा : प्राकृत भाषा क्षेत्रीय प्रभावों के कारण अनेक भागों में विभक्त है। यथा – अर्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, पिशाची आदि। दिगम्बर जैन परम्परा के ग्रंथ शौरसेनी प्राकृत में लिपिबद्ध हैं। शौरसेनी प्राकृत में जो नियम हैं, उन के परिप्रेक्ष्य में दिगम्बर जैनागम के अनेकों शब्दों में नाविन्य है। जैसे – अर्धमागधी व शौरसेनी प्राकृत में सव्वण्णू शब्द का प्रयोग पाया जाता है। यही कारण है कि दिगम्बर परम्परा के प्राकृत ग्रंथों की भाषा का अध्ययन करने के उपरान्त डॉ. पिशेल ने इस भाषा को जैन शौरसेनी यह विशेष नाम प्रदान किया है। संस्कृत के नाटकों में भी यह भाषा प्रयोग में आयी है।

अतः यह स्वतः स्पष्ट है कि दव्वसंगह की भाषा जैन शौरसेनी है। यह भाषा अत्यन्त मधुर है। यही कारण है कि इस ग्रंथ को पुनः पुनः पढ़ने के लिए मन लालायित रहता है।

सम्पादन का आधार : इस टीका का नाम हमने आरा जाने से पूर्व कभी नहीं सुना था। आरा में चातुर्मास से पूर्व कुछ दिन हम जैन बाला विश्राम में भगवान बाहुबली के दर्शनों का लाभ ले रहे थे, वहाँ पर डॉ. गोकुलचन्द जैन ने हमें यह प्रति स्वाध्यायार्थ प्रदान की। इस ग्रंथ का प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ने किया है। इस ग्रंथ का प्रकाशन डॉ. गोकुलचन्द जैन एवं डॉ. ऋषभचन्द जैन के सम्पादन में 1989 में हुआ था। यह प्रकाशन हिन्दी अनुवाद से युक्त नहीं है। इस की प्रस्तावना में लिखा हुआ है कि इसे जैन सिद्धान्त भवन से प्राप्त पाण्डुलिपि के आधार से

सम्पादित किया गया। हम ने भी भवन से प्रति प्राप्त की। प्रति अत्यन्त जीर्ण है, 10 इंच लम्बे, 4½ इंच चौड़े प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग 10 पंक्तियाँ हैं। यह मूल प्रति न हो कर प्रतिलिपि है।

प्रकाशित प्रति एवं पाण्डुलिपि प्रति इन दो प्रतियों के आधार पर इस कृति का अनुवाद किया गया है।

अनुवाद पद्धति : अनुवादिका का यह प्रथम एवं श्रेष्ठ प्रयत्न है। उन्होंने अन्वयार्थ, टीकार्थ के बाद संक्षिप्त रूप से भावार्थ दे कर ग्रंथ को अधिक विस्तृत एवं बोझिल नहीं होने दिया है। गाथा के प्रत्येक शब्द का अर्थ सुस्पष्ट हो जाने के कारण प्राथमिक शिष्यों के लिए यह कृति अत्यन्त उपकारक सिद्ध होगी।

ग्रंथकर्त्ता : इस ग्रंथ के रचयिता आ. नेमिचन्द्र हैं, यह बात 58वीं गाथा में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ होने से निर्भ्रान्त है। आ. नेमिचन्द्र कौन थे? इस विषय पर इतिहासकारों में बहुत मतभेद हैं।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष [पु. 2] में पृष्ठ 629 पर नेमिचन्द्र नामक 4 आचार्यों का वर्णन है। यथा –

1. प्रभाचन्द्र क्र. 1 के शिष्य व भानुचन्द्र के गुरु – ई. 556-565.
2. आ. अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य तथा आ. इन्द्रनन्दि व आ. वीरनन्दि के ज्येष्ठ गुरुभाई ईसवी सन् की 10वीं सदी का उत्तरार्ध व ग्यारहवीं का पूर्वार्ध।
3. आ. नयनन्दि के शिष्य एवं आ. वसुनन्दि के गुरु – समय वि. 1075 से 1125.
4. ज्ञानभूषण भट्टारक के शिष्य – समय वि. 16वीं सदी का उत्तरार्ध।

इन चारों में से द्वितीय क्रमांक के नेमिचन्द्र इस ग्रंथ के रचयिता हैं – ऐसी मान्यता सर्वमान्य थी, परन्तु कुछ विद्वानों ने इस मत का खण्डन किया।

अतः ग्रंथकर्त्ता आ. नेमिचन्द्र कौन हैं? इस में 2 मत हैं। एक मतानुसार सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ही प्रस्तुत ग्रंथ के कर्त्ता हैं, तो दूसरे मतानुसार आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव हैं।

डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री प्रस्तुत ग्रंथ के कर्त्ता सिद्धान्ति देव नेमिचन्द्र हैं, ऐसा मानते हैं। [देखो – तीर्थंकर महावीर और उन की आचार्य परम्परा, भाग-1]

इस मत का खण्डन कर आ. नेमिचन्द्र ही प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता हैं, ऐसा डॉ. गोकुलचन्द जी ने सिद्ध किया है। [देखो - दव्वसंगह की प्रस्तावना]

[प्रिय पाठक बन्धुओं! दोनों मतों के तर्क हमने परिशिष्ट-2 में दिये हैं, कृपया उन्हें आप अवश्य पढ़ें। – सम्पादक]

मैं इतिहासविद् नहीं हूँ, अत: दोनों मान्यताओं में से कौन सी मान्यता सत्य है? इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता।

दव्वसंगह की टीकाएँ : अवचूरि टीका के अतिरिक्त मेरे अध्ययन में इस ग्रंथ की दो टीकाएँ आयी हैं।

1. ब्रह्मदेव ने बारहवीं सदी में इस टीका का प्रणयन किया है। यह विस्तृत टीका है। 10वीं गाथा के व्याख्यान में समुद्घात का, 35वीं गाथा के व्याख्यान में अनुप्रेक्षा एवं लोक का विस्तार से वर्णन किया है। प्रत्येक शब्द का व्याख्यान और फिर उस का विशेष वर्णन करना, यह इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य है। शंका-समाधान की शैली का प्रयोग अनेक जगह किया गया है। अनेक ग्रंथों के उद्धरण टीका में दिये गये हैं। संक्षिप्तत: इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह टीका ग्रंथ के मर्म को हस्तगत करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है।
2. पण्डित प्रवर जयचन्द छाबड़ा ने इस टीका का निर्माण श्रावण शुक्ला चतुर्दशी, वि. सं. 1863 में किया है। यह भाषा टीका पद्यानुवाद युक्त एवं अत्यन्त सरल है।

उपसंहार : एक कार्य के सम्पन्न होने में अनेकों निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है – यह सिद्धान्तवाक्य अक्षरश: सत्य है। प्रस्तुत संस्करण को तैयार करने में भी प्रत्यक्ष और परोक्षत: अनेक स्वाध्यायप्रेमियों का मार्गदर्शन, सहयोग, संशोधन प्राप्त हुआ है, जिन के प्रसाद से ही इस संस्करण को संशोधित रूप में पाठकों तक पहुँचाने का श्रेय प्राप्त हो रहा है, अत: सम्पूर्ण सहयोगियों को श्रुतचक्षुत्व की प्राप्ति हो, यही मंगल कामना।

यह ग्रंथ भव्य जीवों को मोक्षपथ का प्रदर्शन करता रहे – यही भावना।

मुनि सुविधिसागर

अनुक्रमणिका

गाथा क्र.	विषय	पृष्ठ क्र.
1	मंगलाचरण	1
2	जीव के अधिकार	6
3	जीवाधिकार	8
4	उपयोग के तथा दर्शनोपयोग के भेद	9
5	ज्ञानोपयोग के आठ भेद	11
6	उपयोगाधिकार का उपसंहार	13
7	अमूर्तिकाधिकार	15
8	कर्त्ताधिकार	16
9	भोक्ताधिकार	17
10	स्वदेह परिमाणाधिकार	18
11	जीव की संसारी अवस्था	22
12	जीवों के चौदह जीवसमास	22
13	मार्गणा व गुणस्थान की अपेक्षा जीवों के भेद	28
14	सिद्धत्व एवं ऊर्ध्वगमनाधिकार	38
15	अजीवद्रव्य के भेद	41
16	पुद्गल द्रव्य की पर्यायें	42
17	धर्म द्रव्य का लक्षण	43
18	अधर्म द्रव्य का लक्षण	45
19	आकाश द्रव्य का स्वरूप एवं भेद	47
20	लोक–अलोकाकाश का लक्षण	48
21	कालद्रव्य का लक्षण एवं भेद	49
22	निश्चयकाल का लक्षण	50
23	द्रव्य वर्णन का उपसंहार एवं अस्तिकाय के वर्णन की प्रतिज्ञा	51
24	अस्तिकाय का लक्षण	53
25	द्रव्यों की प्रदेश संख्या	54
26	परमाणु के बहुप्रदेशीत्व की सिद्धि	56
27	प्रदेश का लक्षण	57
28	पदार्थों का कथन करने की प्रतिज्ञा	58

29	भावास्रव एवं द्रव्यास्रव का लक्षण	60
30	भावास्रव के भेद	61
31	द्रव्यास्रव का लक्षण	63
32	द्विविध बन्ध का स्वरूप	65
33	बन्ध के चार भेद	65
34	द्विविध संवर का स्वरूप	68
35	भावसंवर के भेद	69
36	निर्जरा के भेद तथा लक्षण	71
37	द्विविध मोक्ष	73
38	पुण्य और पाप का लक्षण	74
39	व्यवहार एवं निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप	75
40	रत्नत्रय युक्त आत्मा ही मोक्ष का कारण	76
41	सम्यग्दर्शन का स्वरूप	77
42	सम्यग्ज्ञान का स्वरूप	78
43	दर्शनोपयोग का स्वरूप	80
44	दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग की प्रवृत्ति का क्रम	81
45	व्यवहार चारित्र का स्वरूप	83
46	निश्चय चारित्र का स्वरूप	84
47	ध्यान की प्रेरणा	85
48	ध्यान के उपाय	86
49	ध्यान करने योग्य मन्त्र	87
50	अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप	89
51	सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप	90
52	आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप	91
53	उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप	92
54	साधु परमेष्ठी का स्वरूप	93
55	ध्यान-ध्याता-ध्येय का स्वरूप	95
56	परम ध्यान का स्वरूप	96
57	ध्यान के उपाय	97
58	ग्रंथ का उपसंहार	99

दव्वसंगह

[अवचुरिजुदो]

:: आचार्य नेमिचन्द्र विरचित ::

उत्थानिका : अथेष्टदेवताविशेषं नमस्कृत्य महामुनि, सिद्धान्तिक श्री नेमिचन्द्रप्रतिपादितानां षड्द्रव्याणां स्वल्पबोधप्रबोधनार्थं संक्षेपार्थतया विवरणं करिष्ये।

गाथा : जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा॥ 1॥

टीका : अर्हन्तं जिनवरं **वंदे** नमस्करोमि, कथम्भूतम्? **देविंदविंदवंदं** देवानाम् इन्द्राः देवेन्द्राः, तेषां वृन्दाः समूहाः, तेषां वन्द्यं पूज्यम्, कदा वन्दे? **सव्वदा** सर्वकालं यावत् सरागपरणतिस्तावद्वन्दे, न वीतरागावस्थायां तदात्मनस्तत्पदप्राप्तेर्न कस्यापि कोऽपि वन्द्यः, अतीतानागतवर्तमानकाले वा। केन वन्दे? **सिरसा** मस्तकेन, **तं** कं वन्दे? **जेण जिणवरवसहेण णिद्दिट्ठं** येन जिनवरवृषभेण निर्दिष्टं प्रतिपादितम्, जिनवराः गणधरदेवादयस्तेषां मध्ये वृषभः प्रधानः, जिनवरश्चासौ वृषभनाथश्च तेन जिनवरवृषभेण। किं निर्दिष्टम्? **जीवमजीवं दव्वं** जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च।

जीवद्रव्यस्य का व्युत्पत्तिः? व्यवहारनयेन दशभिः प्राणैः सह जीवति वर्तमानकाले, जीविष्यति भविष्यत्काले, जीवितः पूर्वमतीतकाले, निश्चयनयेन चतुर्भिः प्राणैः सत्तासुखबोधचैतनैर्जीवति स जीवः। तत्प्राणमाह–

पंच वि इंदियपाणा मणवचिकायेण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण हुंति दस पाणा॥

[गोम्मटसारजीव. गा. 130]

इति जीवः।

अजीवद्रव्यस्य किं स्वरूपम्? पुद्गलधर्माधर्माकाशकालरूपम्।

द्रव्यस्य किं लक्षणम्? द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदिति द्रव्यम्। द्रवति पर्यायं गच्छति, द्रोष्यति पर्यायं यास्यति, अदुद्रुवदितिपर्यायं गतवत्पूर्वं, तदपि गुणपर्ययवत्, **गुणपर्ययवद् द्रव्यम्।** अन्वयेन सह संभवाः गुणाः। व्यतिरेकिणो भिन्नाः पर्यायाः। ते च गुणाः द्विभेदाः, साधारण-असाधारणश्च। पर्याया उत्पादव्ययरूपाः। तत्र जीवस्य साधारणाः- अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वं, चेतनत्वममूर्त्तत्वं चेति। असाधारणाः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राख्यानि, पर्यायाः देवमानुषनारकतिर्यक्त्वेकेन्द्रिय-द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रिया इति।

पुद्गलस्य स्वरूपमाह- "**अविभागीपरमाणुद्रव्यपुद्गलः तथा च जलानलादिभिर्नाशं यो न याति स पुद्गलः**" इति वचनात्। स च द्विविधः, अणुरूपः स्कन्धरूपश्च। अत्र साधारणगुणाः - अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वमचेतनत्वं, मूर्तित्वम् चेति। असाधारणाः स्पर्शरसरूपगन्धवर्णाः। पर्यायाः गलनपूरणस्वभावः। घटितस्य पुनः स्तंभादेः गलनपूरणं नास्ति। कथं नास्ति? सम्प्रति सूत्रतन्तुना स्तंभस्य मानं गृह्यते, वर्षशतेनापि पुनस्तन्मात्रं भूमौ स्थितानां दृश्यते। धर्मद्रव्यस्य साधारणगुणाः - अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्व-मगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वममूर्तत्वमचेतनत्वं चेति। असाधारणाः जीवपुद्गल-योर्गतिसहकारित्वम्। पर्याया उत्पादव्ययाः। अधर्मद्रव्यस्य साधारणगुणाः -अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं, प्रदेशत्वम-मूर्तत्वमचेतनत्वं चेति। असाधारणाः जीवपुद्गलयोः स्थितिसहकारित्वम्। पर्याया उत्पादव्ययाः। कालद्रव्यस्य साधारणगुणाः-अस्तित्वादयः पूर्वोक्ताः

ज्ञातव्या:। असाधारण: द्रव्याणां परिणमयितृत्वम्। आकाशद्रव्यस्य साधारणगुणा:--अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वममूर्तत्वं, प्रदेशत्वमचेतनत्वं चेति। असाधारणा: सकलपदार्थानामवकाशदायक इति प्रतिपादिते सति उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं वस्तुप्रतिपादितं कथितम्।

उत्थानिका : अब इष्ट देवता विशेष को नमस्कार कर के महामुनि सिद्धान्तिक श्री नेमिचन्द्र प्रतिपादित षड्द्रव्यों के स्वल्प प्रबोधनार्थ संक्षेप पद्धति से विवरण करते हैं –

गाथार्थ : [**जेण**] जिन [**जिणवरवसहेण**] जिनवर वृषभ ने [**जीवमजीवं**] जीव और अजीव [**दव्वं**] द्रव्य [**णिद्दिट्ठं**] कहे हैं। [**देविंदविंदवंदं**] देवेन्द्रों के समूह से वन्दनीय [**तं**] उन को [**सव्वदा**] हमेशा [**सिरसा**] सिर नवाँ कर [**वंदे**] नमस्कार करता हूँ।। 1॥

टीकार्थ : अर्हन्त जिनवर को **वंदे** मैं नमस्कार करता हूँ। वे कैसे हैं? **देविंदविंदवंदं** देवों के इन्द्र अर्थात् देवेन्द्र, उन का वृन्द यानि समूह, उन से वन्द्य अर्थात् पूज्य हैं। वन्दना कब करता हूँ? **सव्वदा** सभी काल में, जब तक सराग परिणति है, तब तक वन्दना करता हूँ। वीतराग अवस्था में मैं नमस्कार नहीं करूंगा, क्योंकि उस पद की प्राप्ति होने पर कोई किसी के द्वारा वन्दनीय नहीं होता। अथवा अतीत-अनागत और वर्तमान काल में मैं वन्दना करता हूँ। किस के द्वारा वन्दना करता हूँ? **सिरसा** मस्तक से, उन को, किन को नमस्कार करता हूँ? **जेण जिणवरवसहेण णिद्दिट्ठं** जिन जिनवर वृषभ के द्वारा निर्दिष्ट है, प्रतिपादित है। जिनवर यानि गणधर देवादि, उन में वृषभ यानि प्रधान, जिनवर हैं वृषभनाथ जो, उन जिनवर वृषभनाथ के द्वारा। क्या निर्दिष्ट किया गया है? **जीवमजीवं दव्वं** जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य।

जीव द्रव्य की व्युत्पत्ति क्या है? व्यवहार नय से दश प्राणों के साथ जो

वर्तमान काल में जीता है, भविष्यत् काल में जियेगा और अतीत काल में जीवित रहा था, वह जीव है। निश्चयनय से जो सत्ता-सुख-बोध और चेतना रूप चार प्राणों के साथ जीवित रहता है, वह जीव है।

उस प्राण को कहते हैं -

पाँच इन्द्रियप्राण, मन-वचन-काय ये तीन बलप्राण, श्वासोच्छ्वास और आयु ये सब दश प्राण होते हैं।

[गोम्मटसार जीवकाण्ड - 130]

इस प्रकार जीवद्रव्य का वर्णन हुआ।

अजीव द्रव्य का क्या स्वरूप है? वह पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल रूप है।

द्रव्य का क्या लक्षण है? **द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदिति द्रव्यम्।** द्रवति - पर्याय को प्राप्त होता है, द्रोष्यति - पर्याय को प्राप्त करेगा, अदुद्रुवदिति - पर्याय को पूर्व में प्राप्त कर चुका है। वह द्रव्य भी गुणपर्यायमय है।

द्रव्य गुणपर्यायवान् होता है। [तत्त्वार्थसूत्र 5/38]

जो अन्वय के साथ उत्पन्न होते हैं, वे गुण हैं। व्यतिरेक से जो अभिन्न है, वह पर्याय है। वे गुण दो प्रकार के होते हैं - साधारण और असाधारण। पर्याय उत्पाद-व्ययरूप होती है।

वहाँ जीव के अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये साधारण गुण हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नामक विशेष गुण हैं। देव-मनुष्य-नरक-तिर्यंच, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये पर्याय हैं।

पुद्गल के स्वरूप को कहते हैं -

अविभागी परमाणु द्रव्य पुद्गल है और जल व अग्नि आदि के द्वारा जो

नाश को प्राप्त नहीं होता, वह पुद्गल है। ऐसा वचन है।

वह दो प्रकार का है – अणुरूप और स्कन्धरूप। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व, मूर्तत्व ये पुद्गल के साधारण गुण हैं। स्पर्श, रस, रूप, गन्ध ये असाधारण गुण हैं। पर्याय गलन और पूरण स्वभाववाली है। बने हुए स्तम्भादि में गलन-पूरण नहीं होता है। क्यों नहीं होता है? वर्तमान में सूत्रतन्तु के द्वारा स्तंभ का प्रमाण लिया जाता है, सैकड़ों वर्षों के बाद भी वह उतनी भूमि में स्थित देखा जाता है।

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये धर्म द्रव्य के साधारण गुण हैं। जीव और पुद्गल की गति में सहकारी बनना धर्म द्रव्य का विशेष गुण है। उत्पाद-व्यय उस की पर्यायें हैं।

अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अमूर्तत्व और अचेतनत्व ये अधर्म द्रव्य के साधारण गुण हैं। जीव और पुद्गल की स्थिति में सहकारी बनना अधर्म द्रव्य का विशेष गुण है। उत्पाद-व्यय उस की पर्यायें हैं।

काल द्रव्य के अस्तित्वादि पूर्वकथित साधारण गुण जानने चाहिये। द्रव्यों का परिणमन कराना, उस का असाधारण गुण है।

आकाश द्रव्य के अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व [प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व] अमूर्तत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व ये साधारण गुण हैं। सभी द्रव्यों को अवकाश देना, उस का असाधारण गुण है।

ऐसा प्रतिपादन करने पर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक वस्तु का प्रतिपादन किया गया, कथन किया गया।। 1।।

भावार्थ : भगवान आदिनाथ शतेन्द्रों के द्वारा पूजित हैं। उन्होंने जीव-अजीव द्रव्य का व्याख्यान किया है। ऐसे जिनेन्द्र को मैं मस्तक झुका कर नमस्कार करता हूँ।। 1।।

•—•—•

उत्थानिका : इदानीं जीवस्वरूपमाह –

गाथा : जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥ 2॥

टीका : जीवोऽस्ति चेतनालक्षणः स्वपररूपसम्वेदकः तथा **उवओगमओ** उपयोगमयः ज्ञानदर्शनलक्षणोपयोगेन युक्तः। अनेन प्रकृतिगुणाः ज्ञानादय इत्यपास्तं मोक्षे ज्ञानाद्यभाव इति च। तथा **अमुत्ति** अमूर्तिः कर्मनोकर्मभिः सदा संबन्धेऽपि नैव मूर्तिः स्वकीयस्वभावस्तु अमूर्तस्वरूपापरित्यागात्, तथा **कत्ता** कर्त्ता, केषाम्? कर्मणां तन्निमित्तात्मपरिणामानां च कर्त्ता। अनेन प्रकृतेरेव कर्मकर्तृत्वं नात्मन इत्येकान्तो निरस्तः। तथा **सदेहपरिमाणो** नामकर्मोदयवशादुपात्ताणु-महच्छरीरप्रमाणो न न्यूनो नाप्यधिकः। अनेनात्मनः सर्वगतत्वं वटकणिकामात्रं च प्रत्याख्यातम्। तथा **भोत्ता** भोक्ता, केषाम्? शुभाशुभकर्मसंपादितेष्टानिष्टविषयाणां तत्प्रभवसुखदुःखपरिणामानां च। तथा **संसारत्थो** त्रसस्थावरपर्यायैर्युक्तः संसारे संसरतीति। तथा **सिद्धो सो** सः प्रागुक्तात्मा सकलकर्मक्षयात् सिद्धो भवति। पुनः किं विशिष्टः? **विस्ससोड्ढगई** सिद्धः सन् विश्वस्य त्रैलोक्यस्योर्ध्वं गच्छति अथवा विश्वस्य स्वभावेन ऊर्ध्वं गच्छति। किंचन? एरण्डबीजवत्, अग्निशिखावच्च, जलमध्ये आलाबुवदिति। अनेन यत्रैव मुक्तस्तत्रैव स्थित इति निरस्तः। अत्रौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्माणशरीराणि नोकर्माः।

उत्थानिका : अब जीव का स्वरूप कहते हैं –

गाथार्थ : [**सो**] वह [**जीवो**] जीव [**उवओगमओ**] उपयोगमय

[**अमुत्ति**] अमूर्तिक [**कत्ता**] कर्त्ता [**सदेहपरिमाणो**] स्वदेह परिमाण [**भोत्ता**] भोक्ता [**संसारत्थो**] संसारस्थ [**सिद्धो**] सिद्ध [**विस्ससा**] स्वभाव से [**उड्ढगई**] ऊर्ध्वगामी है।। 2॥

टीकार्थ : जीवो जीव चेतनालक्षण वाला तथा स्व-पर रूप संवेदक है तथा **उवओगमओ** उपयोगमय, ज्ञान-दर्शन लक्षण वाले उपयोग से युक्त है। इस से ज्ञानादि प्रकृतिगुण नष्ट होता है, मोक्ष में ज्ञान का अभाव होता है, इस मत को निराकृत किया गया। तथा **अमुत्ति** अमूर्ति, कर्म नो-कर्म के साथ सदा सम्बन्ध होते हुए भी मूर्तिकता स्वकीय स्वभाव नहीं है, क्योंकि अमूर्त स्वभाव का परित्याग नहीं होता है। तथा **कत्ता** कर्त्ता, किन्हीं कर्मों का और उस के निमित्त से होने वाले आत्मपरिणामों का कर्त्ता है। इस कथन से ही आत्मा कर्मों का कर्त्ता नहीं है, ऐसा एकान्त निरस्त हो गया। तथा **सदेहपरिणामो** नाम कर्मोदय के वश से उत्पन्न अणु और महत् शरीर प्रमाण है, न न्यून है और न अधिक है। इस से आत्मा का सर्वगतत्व और वटकणिका मात्र पने का निषेध हुआ। तथा **भोत्ता** भोक्ता, किन्हीं शुभाशुभकर्मों से सम्पादित इष्ट-अनिष्ट विषयों का और उस से उत्पन्न सुख-दुःख परिणामों का भोक्ता है। तथा **संसारत्थो** त्रस और स्थावरपर्याय से युक्त संसार में संसरण करता है। तथा **सिद्धो सो** वह पूर्वकथित आत्मा सकल कर्मों का क्षय कर के सिद्ध होता है। पुनः क्या विशेषता है? **विस्ससोड्ढगई** सिद्ध हो कर विश्व के, त्रैलोक्य के ऊर्ध्व जाता है अथवा स्वभाव से ऊर्ध्व जाता है। किस प्रकार? एरण्ड बीज के समान, अग्नि शिखा के समान, जल में तुम्बी के समान। इस से जहाँ से मुक्त होते हैं, वहीं स्थित रहते हैं, यह मत निरस्त हो गया।

यहाँ औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर नो कर्म हैं।। 2॥

भावार्थ : आत्मा के 9 अधिकार हैं। (1) जीव, (2) उपयोगमय, (3) अमूर्तिक, (4) कर्त्ता, (5) स्वदेहपरिमाण, (6) भोक्ता, (7) संसारस्थ, (8) सिद्ध और (9) ऊर्ध्वगमन ॥ 2 ॥

●—●—●

उत्थानिका : सो जीवो व्यवहाररूपतया परमार्थरूपतया च द्विविध उच्यते, इत्याह –

गाथा : तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउ आणपाणो य।
विवहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेयणा जस्स ॥ 3 ॥

टीका : विवहारा सो जीवो व्यवहारनयात् सो जीवो भण्यते। स कः? **जस्स** यस्य विद्यन्ते, के ते? **चदु पाणा** चत्वारः प्राणाः, किं नामानाः? **इंदियबलमाउआणपाणो य** इन्द्रियप्राणाः बलप्राणः आयुप्राण आणपाणप्राणश्च एवं चत्वारो भेदेन। पुनर्दश कथम्? पंच इन्द्रियप्राणादिगाथाप्रथमसूत्रव्याख्यानेन प्रथमोक्तम्। इन्द्रियं पञ्चेन्द्रियसंज्ञिजीवापेक्षया प्रतिपादितं न पुनः सर्वजीवापेक्षया। कस्मिन् काले ते चत्वारः प्राणाः भवन्ति? **तिक्काले** अतीतानागतवर्तमान–कालत्रयेऽपि, एकेन्द्रियापेक्षया विकल्पः, **णिच्छयणयदो दु** निश्चयनयात्पुनः **चेयणा जस्स** चैतन्यमेवोदयं यस्य।

उत्थानिका : वह जीव व्यवहार और परमार्थ रूप से दो प्रकार का है, ऐसा कहते हैं।

गाथार्थ : [**जस्स**] जिस के [**तिक्काले**] तीन काल में [**इंदिय बलमाउ**] इन्द्रिय, बल, आयु [**य**] और [**आणपाणो**] श्वासोच्छ्वास ये [**चदु**] चार [**पाणा**] प्राण हैं [**सो**] वह [**विवहारा**] व्यवहारनय से [**जीवो**]

जीव है [दु] और [**जस्स**] जिस के [**चेयणा**] चेतना है [**सो**] वह [**णिच्छयणयदो**] निश्चयनय से [**जीवो**] जीव है।। 3 ॥

टीकार्थ : विवहारा सो जीवो व्यवहार नय से वह जीव कहलाता है। वह कौन? **जस्स** जिस के होते हैं। क्या होते हैं? **चदुपाणा** चार प्राण। किस नाम वाले? **इंदियबलमाउआणपाणो य** इन्द्रिय प्राण, बल प्राण, आयु प्राण और श्वासोच्छ्वास प्राण, इन चार भेद से। फिर दश प्राण किस प्रकार हैं? पंच इन्द्रिय प्राणादि गाथा प्रथम सूत्र के व्याख्यान में कही गयी है। इन्द्रिय संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की अपेक्षा से कही गयी है, न कि सम्पूर्ण जीवों की अपेक्षा से। कौन से काल में वे चार प्राण होते हैं? **तिक्काले** अतीत-अनागत-वर्तमान इन तीनों ही कालों में एकेन्द्रियों की अपेक्षा से ये कथन है **णिच्छयणय दो दु** पुनः निश्चयनय से **चेयणा जस्स** – चेतना का उदय है जिस के।। 3 ॥

भावार्थ : जिस के त्रिकाल में इन्द्रिय-बल-आयु-श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण हैं, वह व्यवहारनय से जीव है। जिस में चेतना है, वह जीव है – यह निश्चयनय का कथन है।। 3 ॥

पाठभेद :	विवहारा	–	ववहारा	
	चेयणा	–	चेदणा	।। 3 ॥

●–●–●

उत्थानिका : तस्य जीवस्य उपयोगद्वयमाह –

गाथा : उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।

चक्खु-अचक्खु-ओही-दंसणमह केवलं णेयं॥ 4 ॥

टीका : उवओगो दुवियप्पो उपयोगो द्विविधविकल्पः कथमित्याह – **दंसणणाणं च** दर्शनोपयोगो ज्ञानोपयोगश्च, तत्र दर्शनोपयोगः – **चदुधा**

चतुः प्रकारः, कथमित्याह – **चक्खुअचक्खुओही** चक्षुदर्शनमचक्षु-दर्शनमवधिदर्शनं, **अह** अथ **केवलं** केवलदर्शनं चेति, **णेयं** ज्ञातव्यमिति। अत्र चक्षुर्दर्शनमेकप्रकारम्, अचक्षुदर्शनं स्पर्शरसगन्धश्रोत्रभेदाच्चतुर्भेदम्।

उत्थानिका : उस जीव के दो उपयोगों को कहते हैं –

गाथार्थ : [**उवओगो**] उपयोग [**दुवियप्पो**] दो प्रकार का है [**दंसण**] दर्शन [**च**] और [**णाणं**] ज्ञान। [**दंसणं**] दर्शनोपयोग [**चदुधा**] चार प्रकार का है [**चक्खु**] चक्षुदर्शन [**अचक्खु**] अचक्षुदर्शन [**ओही**] अवधि [**दंसणं**] दर्शन [**अह**] और [**केवलं**] केवलदर्शन, ऐसा [**णेयं**] जानना चाहिये।। 4 ॥

टीकार्थ : **उवओगो दुवियप्पो** उपयोग दो प्रकार का है। किस प्रकार? सो कहते हैं **दंसणणाणं च** दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग। उस में दर्शनोपयोग **चदुधा** चार प्रकार का है। किस प्रकार? सो कहते हैं – **चक्खुअचक्खुओही** चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन **अह** और **केवलं** केवलदर्शन **णेयं** जानना चाहिये। इस में चक्षुदर्शन एक प्रकार का है, अचक्षुदर्शन स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु के भेद से चार प्रकार का है।। 4॥

भावार्थ : दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग के भेद से उपयोग दो प्रकार का है। उन में से दर्शनोपयोग चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग, अवधिदर्शनोपयोग तथा केवलदर्शनोपयोग इस तरह चार प्रकार का है।। 4॥

पाठभेद : अचक्खु = अचक्खू
दंसणमह = दंसणमध।। 4॥

●—●—●

उत्थानिका : ज्ञानमष्टविकल्पं भवतीत्याह –

गाथा : णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जयकेवलमह पच्चक्खपरोक्ख भेयं च॥ 5॥

टीका : णाणं अट्ठवियप्पं ज्ञानमष्टविकल्पं भवति, कथम्? **मदिसुदिओही अणाणणाणाणि मणपज्जयकेवलमह** मतिश्रुतावधिज्ञानानि, कथंभूतानि? **अणाणणाणाणि** अज्ञानसंज्ञानानि, मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानं अवधि-अज्ञानं विभंगज्ञान, विज्ञानानि, मन:पर्ययं केवलमथानन्तरं तत्र विशिष्टमत्यावरणकर्मक्षयोपशमादिन्द्रियैर्मनसा च यज्जानाति तन्मतिज्ञानं षट्त्रिंशतत्रयशतभेदा:।336। किं विशिष्टम्? श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमे सति निरूप्यमाणं श्रुतं यज्जानाति तच्छ्रुतज्ञानम्, तन्मतिपूर्वकं कथम्? यथाङ्कुरो बीजपूर्वक:, [तथा श्रुतं मतिपूर्वक:] तच्च द्विभेदमनेकभेदं च। द्वौ भेदौ तावदुच्येते-अङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टं च, अङ्गबाह्यमनेकविधं **दशवैकालिकोत्तराध्ययनादि।** अथ चतुर्दशप्रकीर्णका:- सामायिकोत्तरादिपुण्डरीकान्ता:। अङ्गप्रविष्टं द्वादशाङ्गान्याचारादि। अनेकभेदा: पर्यायादि। विशिष्टावधिज्ञानावरणक्षयोपशमात् मनसोऽवष्टंभेन यत्सूक्ष्मान् पुद्गलान् परिच्छिनत्ति स्वपरयोश्च पूर्वजन्मान्तराणि जानाति, भविष्यजन्मान्तराणि तदवधिज्ञानम्, तद्देशावधि-परमावधि-सर्वावधिभेदात् त्रिविधम्। विशिष्टं क्षयोपशमान्मनसोऽवष्टम्भेन परमनसिस्थितमर्थं यज्जानाति तन्मन:पर्ययज्ञानम्। तदृजुविपुलमतीविकल्पाद्विभेदम्। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीयान्तरायरूपघातिकर्मचतुष्टय-निर्मूलोन्मूलनाद् वेदनीयायुगोत्रनामकर्मणां दग्धरज्जुवत् स्थिते यदुत्पन्नं त्रैलोक्योदरवर्तिसमस्तवस्तुयुगपत्सकलपदार्थप्रकाशकमसहायं

तत्केवलज्ञानम्। अत्र मतिश्रुते परोक्षे, अवधिमनःपर्यये देशप्रत्यक्षे, केवलं सकलप्रत्यक्षमिति।

उत्थानिका : ज्ञान आठ प्रकार का होता है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**णाणं**] ज्ञान [**अट्ठवियप्पं**] आठ प्रकार का है। [**मदि**] मति [**सुदि**] श्रुत [**ओही**] अवधि [**अणाणणाणाणि**] अज्ञान और ज्ञान रूप हैं। [**मणपज्जय**] मनःपर्यय [**केवलं**] केवलज्ञान। [**अह**] और [**पच्चक्ख**] प्रत्यक्ष [**च**] और [**परोक्ख**] परोक्ष [**भेयं**] भेद [से युक्त है।] ॥5॥

टीकार्थ : णाणं अट्ठवियप्पं ज्ञान के आठ भेद हैं। किस प्रकार? **मदि सुदि ओही अणाणणाणाणि मणपज्जय केवलमह** मति-श्रुत-अवधिज्ञान, कैसे हैं? **अणाणणाणाणि** अज्ञानसंज्ञक मतिश्रुतावधिज्ञान अर्थात् मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, अवधि अज्ञान यानि विभंगज्ञान तथा सम्यग्ज्ञान। मनःपर्यय और केवल। उस में विशिष्टमत्यावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण इन्द्रिय और मन से जो जानता है, वह मतिज्ञान है, उस के 336 भेद हैं।

क्या विशेषता है? श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर कथन किये जाने वाले श्रुत को जो जानता है, वह श्रुतज्ञान है। उसे मतिज्ञानपूर्वक क्यों कहा गया है? जैसे अंकुर बीज पूर्वक होता है [उसी प्रकार श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है] उस के दो भेद हैं और अनेक भेद भी हैं। दो भेदों को कहते हैं – अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट। अंगबाह्य दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि अनेक प्रकार का है। सामायिक से पुण्डरीक तक चौदह प्रकीर्णक हैं। आचारादि 12 अंग रूप अंगप्रविष्ट है। पर्यायादि अनेक भेद हैं।

विशिष्ट अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मन के सानिध्य में जो सूक्ष्म पुद्गलों को जानता है, स्व और पर के पूर्व जन्मान्तरों को तथा भविष्यत् जन्मान्तरों को जानता है, वह अवधिज्ञान है। वह देशावधि, परमावधि और

सर्वावधि के भेद से तीन प्रकार का है।

विशिष्ट क्षयोपशम के कारण मन के साथ पर मन में स्थित अर्थ को जो जानता है, वह मन:पर्यय ज्ञान है। उस के ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो भेद हैं।

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय और अन्तराय रूप घातिकर्म के निर्मूल रूप से उन्मूलन करने से, वेदनीय-आयु-गोत्र-नाम कर्म के दग्धरज्जु के समान स्थित रहने पर जो उत्पन्न होता है, जो त्रैलोक्य के उदर में स्थित समस्त वस्तुओं को युगपत् जानता है, सकल पदार्थों का प्रकाशक है, असहाय है, वह केवलज्ञान है।

इन में मति-श्रुत परोक्षज्ञान हैं, अवधि और मन:पर्यय देशप्रत्यक्ष हैं तथा केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है ।। 5 ।।

भावार्थ : मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, अवधि अज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान ये ज्ञानोपयोग के 8 भेद हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से ज्ञानोपयोग के दो भेद भी हैं ।। 5 ।।

पाठभेद : केवलमह - केवलमवि ।। 5 ।।

●—●—●

उत्थानिका : तस्य जीवस्य सामान्येन व्यवहारलक्षणं विशेषेण निश्चयलक्षणं चाह –

गाथा : अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।

ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ।। 6 ।।

टीका : जीवलक्खणं भणियं जीवानां लक्षणं स्वभावो भणितम्। कथंभूतम्? **सामण्णं** सामान्यम्। अयमर्थः-केषांचित् शक्तिरूपेण केषांचिद् व्यक्तिरूपेण विद्यमानत्वात्। कदा? सामान्यम्? **ववहारणया**

व्यवहारनयापेक्षया। किं लक्षणम्? **अट्ठ चदु णाणदंसण** अष्टप्रकारं ज्ञानं चतु:प्रकारं दर्शनम्, एते व्याख्येते प्रागेव। **सुद्धं पुण दंसणं णाणं** शुद्धनयापेक्षया शुद्धं पुनर्दर्शनं ज्ञानं च, दृष्टत्वं ज्ञातृत्वं च।

उत्थानिका : उस जीव के सामान्य से व्यवहार लक्षण और विशेष से निश्चय लक्षण को कहते हैं –

गाथार्थ : [**ववहारा**] व्यवहार से [**अट्ठचदुणाणदंसण**] आठ ज्ञान और चतुर्विध दर्शन को [**सामण्णं**] सामान्य से [**जीवलक्खणं**] जीव का लक्षण [**भणियं**] कहा है। [**पुण**] पुनः [**सुद्धणया**] शुद्धनय से [**सुद्धं**] शुद्ध [**दंसणं**] दर्शन [**णाणं**] ज्ञान [जीव का लक्षण कहा गया है] ॥ 6॥

टीकार्थ : जीवलक्खणं भणियं जीवों का लक्षण यानि स्वभाव कहा गया है। किस प्रकार? **सामण्णं** सामान्य। इस का यह अर्थ है कि - किन्हीं को शक्ति रूप से, किन्हीं को व्यक्ति रूप से विद्यमान होता है। सामान्य कब होता है? **ववहारणया** व्यवहार नय की अपेक्षा से। क्या लक्षण है? **अट्ठचदुणाणदंसण** आठ प्रकार का ज्ञान, चार प्रकार का दर्शन। इन का व्याख्यान पूर्व में किया जा चुका है। **सुद्धं पुण दंसणं णाणं** शुद्धनय की अपेक्षा से पुन: शुद्ध दर्शन और ज्ञान, दृष्टत्व और ज्ञातृत्व॥ 6॥

भावार्थ : आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन व्यवहार नय से जीव का लक्षण है। शुद्ध ज्ञान और दर्शन निश्चय नय से जीव का लक्षण है॥ 6॥

विशेष : टीकाकार ने टीका में ववहारा की जगह ववहारणया पाठ का प्रयोग किया है। परन्तु छन्द की दृष्टि से ववहारा पाठ ही उचित है।

[**सम्पादक**]

●—●—●

उत्थानिका : स च जीवो मूर्तिर्भवत्यमूर्तिश्चेत्याह –

गाथा : वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो॥ 7॥

टीका : सो जीवो **अमुत्ति तदो** अमूर्तिः ततः, कारणाद्यस्मान्नो सन्ति नैव विद्यन्ते। के ते? **वण्णरसपंच गंधा दो फासा अट्ठ** वर्णाः पञ्च रक्तपीतनीलकृष्णश्वेताः। रसाः पञ्च कटुतिक्तकषायमधुरलवणाम्लाः। गन्धौ द्वौ सुरभिदुरभिश्च। स्पर्शाः अष्ट मृदुकर्कशगुरुलघुस्निग्धरूक्षशीतोष्णाः एते न सन्ति, कदा न सन्ति? **णिच्छया** निश्चयनयापेक्षया, **ववहारा** व्यवहारनयापेक्षया पुनः **मुत्ति** मूर्तियुक्तः उक्तः। **बंधादो** कर्मनोकर्मबन्ध-वशात्।

उत्थानिका : वह जीव मूर्तिक और अमूर्तिक है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**णिच्छया**] निश्चय से [**जीवे**] जीव में [**पंच वण्ण**] पाँच वर्ण [**पंच रस**] पाँच रस [**दो गंधा**] दो गन्ध [**अट्ठ फासा**] अष्ट स्पर्श [**णो**] नहीं [**संति**] है। [**तदो**] इसलिए [**सो**] वह [**अमुत्ति**] अमूर्तिक है। [**ववहारा**] व्यवहार से [**बंधादो**] बन्ध के कारण [**मुत्ति**] मूर्तिक है॥7॥

टीकार्थ : वह जीव **अमुत्ति तदो** उस कारण से अमूर्तिक है। इस में कोई कारण नहीं है। वे कौन हैं? **वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ** वर्ण पाँच हैं, लाल-पीला-नीला-काला और सफेद। रस पाँच हैं, कडुआ-तीखा-कसायला-मधुर और लवणाम्ल। गन्ध दो हैं, सुरभि और दुरभि। स्पर्श आठ हैं, मृदु-कर्कश-गुरु-लघु-स्निग्ध-रूक्ष-शीत-ऊष्ण। ये नहीं होते हैं। कब नहीं होते हैं? **णिच्छया** निश्चय नय की अपेक्षा से **ववहारा** पुनः व्यवहार नय की अपेक्षा से **मुत्ति** मूर्तिक है, ऐसा कहा गया है। **बंधादो** कर्म और नो-

कर्म के बन्ध के कारण।। 7 ॥

भावार्थ : जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श नहीं है। अतः निश्चय नय की अपेक्षा से जीव अमूर्तिक है। जीव पुद्‌गल कर्मों से बन्धता है, वे कर्म मूर्तिक हैं। अत: व्यवहार नय से जीव बन्ध के कारण मूर्तिक है।। 7 ॥

●—●—●

उत्थानिका : सः व्यवहारकर्त्ता परमार्थकर्त्ता च भवतीत्याह –

गाथा : **पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।**
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं॥ 8 ॥

टीका : स **आदा** आत्मा, **कत्ता** कर्त्ता भवति। कदा? **ववहारदो** व्यवहारनयापेक्षया, केषां कर्त्ता? **पुग्गलकम्मादीणं** पुद्‌गलकर्मादीनां, **णिच्छयदो** निश्चयनयापेक्षया, **दु** पुनः, **चेदणकम्माण** चेतनकर्मणां क्रोधादीनां कर्त्ता **सुद्धणया** शुद्धनयापेक्षया **सुद्धभावाणं** शुद्धभावानाम्, अनन्तदर्शनज्ञानवीर्यसुखानामुत्तरोत्तरप्रकृष्टपरिणामानां कर्त्ता।

उत्थानिका : वह व्यवहारकर्त्ता और परमार्थकर्त्ता होता है, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ : [**आदा**] आत्मा [**ववहारदो**] व्यवहार से [**पुग्गलकम्मादीणं**] पुद्‌गल कर्मों का [**णिच्छयदो**] निश्चय से [**चेदणकम्माण**] चैतन्यकर्मों का [**दु**] और [**सुद्धणया**] शुद्धनय से [**सुद्धभावाणं**] शुद्ध भावों का [**कत्ता**] कर्त्ता है।। 8 ॥

टीकार्थ : वह **आदा** आत्मा **कत्ता** कर्त्ता होता है। कब? **ववहारदो** व्यवहार नय की अपेक्षा से। किन का कर्त्ता होता है? **पुग्गलकम्मादीणं** पुद्‌गल कर्मादिकों का **णिच्छयदो** निश्चय नय की अपेक्षा से **दु** पुनः

चेदणकम्माण चेतन कर्मों का, क्रोधादिकों का कर्त्ता है। **सुद्धणया** शुद्ध नय की अपेक्षा से **सुद्धभावाणं** शुद्ध भावों का, अनन्त दर्शन–ज्ञान–वीर्य–सुख इन गुणों के उत्तरोत्तर प्रकृष्ट परिणामों का कर्त्ता है।। 8 ।।

भावार्थ : व्यवहार नय से आत्मा पुद्गल कर्मों का [द्रव्य कर्मों का] कर्त्ता है। अशुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से आत्मा क्रोधादि चेतन कर्मों का [भाव कर्मों का] कर्त्ता है। शुद्ध निश्चय नय से आत्मा अपने शुद्ध भावों का कर्त्ता है।। 8 ।।

●–●–●

उत्थानिका : स च व्यवहारभोक्ता भवतीत्याह –

गाथा : ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ।। 9 ।।

टीका : स आदा पभुंजेदि स आत्मा प्रभुङ्क्ते। किं तत्? **पुग्गलकम्मप्फलं** पुद्गलसम्बन्धात्कर्मणः फलं सः चेतनानां कर्मणामित्यर्थः। किं फलम्? **सुहदुक्खं** सुखं दुःखं च भुङ्क्ते। कदा भुङ्क्ते? **ववहारा** व्यवहारनयापेक्षया, **णिच्छयदो** निश्चयनयापेक्षया पुनः **चेदणभावं खु आदस्स** आत्मनः परमानन्दस्वरूपतामुपभुङ्क्ते स्फुटम्।

उत्थानिका : वह व्यवहार से भोक्ता होता है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**आदा**] आत्मा [**ववहारा**] व्यवहार से [**सुहदुक्खं**] सुख–दुःख रूप [**पुग्गलकम्मफलं**] पुद्गल कर्मफलों को [**णिच्छयणयदो**] निश्चयनय से [**आदस्स**] आत्मा के [**चेदणभावं**] चैतन्य भाव को [**खु**] निश्चयतः [**पभुंजेदि**] भोगता है।। 9 ।।

टीकार्थ : स आदा पभुंजेदि वह आत्मा भोक्ता है। क्या भोगता है?

पुग्गलकम्मफ्फलं पुद्गल के सम्बन्ध से कर्मों के फल का, वह आत्मा चैतन्य कर्मों का भोक्ता है, यह अर्थ है। क्या फल है? **सुहदुक्खं** सुख और दुःख को भोगता है। कब भोगता है? **ववहारा** व्यवहार नय की अपेक्षा से, **णिच्छयदो** पुनः निश्चय नय की अपेक्षा से **चेदणभावं खु आदस्स** आत्मा के परमानन्द स्वरूप का निश्चय से उपभोक्ता है।। 9।।

भावार्थ : आत्मा व्यवहार नय से पुद्गल कर्मों के फल सुख-दुःखों का भोक्ता है। आत्मा निश्चय नय से अपने चैतन्यमयी भावों का भोक्ता है।। 9।।

●—●—●

उत्थानिका : स आत्मा व्यवहारपरमार्थापेक्षयेत्थं प्रमाण इति वदन्नाह-

गाथा : अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।

असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा।। 10।।

टीका : चेदा अणुगुरुदेहपमाणो, स आत्मा व्यवहारनयमासृत्य सूक्ष्मस्थूलदेहप्रमाणो यदा कर्मवशात् कुन्थुपर्यायं ग्रह्णाति, तदा तद्देहप्रमाणः यदा हस्तिप्रमाणं पर्यायं गृह्णाति तदा तद्देहप्रमाणः। कुतः? **उवसंहारप्पसप्पदो** उपसंहारप्रसर्पणतः, यत उपसंहारविस्तारधर्मो ह्यात्मा। कोऽत्र दृष्टान्तः? यथा प्रदीपो महद्भाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति, लघुभाजनप्रच्छादितस्तद्भाजनान्तरं प्रकाशयति इति। किन्तु **असमुहदो** समुद्घातसप्तकं वर्जयित्वा, तत्राणुगुरुत्वाभावः।

समुद्घातभेदानाह -

वेयण-कसाय-विउव्वण तह मारणंतिओ समुग्घाओ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु।।

[गो. जी. 667]

समुद्घातलक्षणमाह –

मूलशरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो हवदि समुग्घादयं णाम॥
[गो. जी. 668]

तत्प्रत्येकं यथा – तीव्रवेदनानुभवन्मूलशरीरमत्यक्त्वा आत्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति वेदनासमुद्घातः। तीव्रकषायोदयात्मूलशरीरमत्यक्त्वा परस्य घातार्थमात्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति कषायसमुद्घातः। मूलशरीरमत्यज्य किमपि विकुर्वयितुमात्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति विकुर्वणासमुद्घातः। मारणान्तिकसमये मूलशरीरमत्यज्य यत्र कुत्रचिद्बद्धमायुस्तत्प्रदेशं स्पृष्टुमात्मप्रदेशानां बहिर्निर्गमनमिति मारणान्तिकसमुद्घातः। स्वस्य मनोऽनिष्टजनकं किंचित्कारणान्तरमवलोक्य समुत्पन्नक्रोधस्य संयमनिधानस्य महामुनिर्मूलशरीरमत्यज्य सिन्दूरपुञ्जप्रभो दीर्घत्वेन द्वादशयोजनप्रमाणः सूच्यंगुलसंख्येयभागो मूलविस्तारः नवयोजनाग्रविस्तारः काहलाकृतिपुरुषो वामस्कन्धान्निर्गत्य वामप्रदक्षिणेन हृदयनिहितं विरुद्धं वस्तु भस्मसात्कृत्य तेनैव संयमिना सह स च भस्मतां व्रजति, द्वीपायनवत्। असावशुभरूपस्तेजः समुद्घातः। लोकं व्याधिदुर्भिक्ष्यादिपीडितमवलोक्य समुत्पन्नकृपस्य परमसंयमनिधानस्य महर्षेर्मूलशरीरमत्यज्य शुभ्राकृतिः, प्रागुक्तदेहप्रमाणः पुरुषो दक्षिणस्कंधान्निर्गत्य दक्षिणेन व्याधिदुर्भिक्षादिकं स्फेटयित्वा पुनरपि स्वस्थाने प्रविशति असौ शुभरूपस्तेजः समुद्घातः। समुत्पन्नपदपदार्थभ्रान्ते परमर्द्धिसंपन्नस्य महर्षेर्मूलशरीरमत्यज्य शुद्धस्फटिकाकृतिरेकहस्तप्रमाणः पुरुषो मस्तकमध्यान्निर्गत्य यत्र कुत्रचिदन्तर्मुहूर्त्तमध्ये केवलज्ञानिनं पश्यति तद्दर्शनाच्च स्वाश्रयस्य मुनेः पदपदार्थनिश्चयं समुत्पादयिष्यतः असावाहारसमुद्घातः। सप्तमः केवलिनां दंडकपाटप्रतरपूरणस्वभावः

सोऽयं केवलिसमुद्घातः। स एव **णिच्छयणयदो** निश्चयनयापेक्षया, **असंखदेसो वा** असंख्याता लोकमात्रा वा शब्दोऽत्र स्फुटवाची इत्युक्तस्वदेहप्रमाणं प्रतिपादितः।

उत्थानिका : वह आत्मा व्यवहार और निश्चय की अपेक्षा से इस प्रमाण है, ऐसा बताते हुए कहते हैं –

गाथार्थ : [**चेदा**] आत्मा [**ववहारा**] व्यवहार से [**असमुहदो**] असमुद्घात अवस्था में [**उवसंहारप्पसप्पदो**] उपसंहार व प्रसर्पण के कारण [**अणुगुरुदेहपमाणो**] छोटे बड़े प्रमाण का धारक है [**वा**] और [**णिच्छयणयदो**] निश्चय नय से [**असंखदेसो**] असंख्यात प्रदेशी है ।। 10 ।।

टीकार्थ : चेदा अणुगुरुदेहपमाणो वह आत्मा व्यवहार नय के आश्रय से सूक्ष्म-स्थूल देह के प्रमाण है। जब कर्मवशात् कुन्थु पर्याय को ग्रहण करता है, तब उस देह के प्रमाण है। जब हाथी प्रमाण पर्याय को ग्रहण करता है, तब उस देह के प्रमाण हैं। क्यों? **उवसंहारप्पसप्पदो** उपसंहार और प्रसर्पण से, क्योंकि आत्मा उपसंहार और विस्तार धर्मवाला है। इस में कौन सा दृष्टान्त है? जैसे प्रदीप बड़े बर्तन से आच्छादित होने पर उस बर्तन को प्रकाशित करता है, छोटे बर्तन से प्रच्छादित होने पर उसी बर्तन को प्रकाशित करता है। परन्तु **असमुहदो** सप्त समुद्घात को छोड़ कर, वहाँ लघु-गुरुत्व का अभाव है।

समुद्घात के भेदों को कहते हैं –

> **वेदना, कषाय, वैक्रियक, मारणान्तिक, तैजस, छठवाँ आहारक और सातवाँ केवलियों का समुद्घात है।**
>
> [गो. जी. 667]

समुद्घात के लक्षण को कहते हैं –

मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का उत्तर शरीर की ओर गमन होना, समुद्घात कहलाता है।

[गो. जी. 668]

वह प्रत्येकी, जैसे – तीव्र वेदना के अनुभव से मूल शरीर को छोड़े बिना आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना वेदना समुद्घात है।

तीव्र कषाय के उदय से मूल शरीर को छोड़े बिना परघात के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना कषाय समुद्घात है।

मूल शरीर को छोड़े बिना किसी भी प्रकार की विक्रिया करने के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना विक्रिया समुद्घात है।

मरण के समय में मूल शरीर को छोड़े बिना जहाँ कहीं की बद्ध आयु है। इस स्थान को स्पर्श करने के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना, कषाय समुद्घात है।

अपने मन को अनिष्ट उत्पन्न करने वाले किंचित् कारण को देख कर उत्पन्न हुआ है क्रोध जिन को ऐसे संयमनिधान महामुनि के मूल शरीर को छोड़े बिना सिन्दूर के पूंज की प्रभा वाला, बारह योजन प्रमाण दीर्घ, सूच्यंगुल के संख्येय भाग मूल विस्तार एवं नव योजन अग्र में विस्तार वाला, काहलाकृति [बिलाव के आकार का] धारक, बायें कंधे से निकल कर बायीं प्रदक्षिणा कर के हृदय के विरुद्ध वस्तु को भस्म कर के, उसी से ही संयमी के साथ स्वयं भी भस्म हो जाता है, द्वीपायन के समान। यह अशुभ तैजस समुद्घात है।

लोक को व्याधि–दुर्भिक्षादि से पीड़ित देख कर उत्पन्न हुई है कृपा जिन को, ऐसे परम संयम निधान महर्षि के मूल शरीर को छोड़ कर सफेद आकृति वाला, पूर्वकथित देह प्रमाण का धारक पुरुष दक्षिण कंधे से निकल कर

दक्षिण से ही व्याधि-दुर्भिक्षादिका विनाश कर के पुनः अपने स्व स्थान में प्रवेश करता है। यह शुभ रूप तैजस समुद्घात है।

पद या पदार्थ में भ्रान्ति उत्पन्न होने पर परम ऋद्धि सम्पन्न महर्षि के मूल शरीर को छोड़े विना शुद्ध स्फटिक के आकार वाला एक हाथ प्रमाण पुरुष मस्तक से निकल कर जहाँ कहीं भी अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञानी को देखता है, उन के दर्शन से स्वाश्रित मुनि के पद-पदार्थ के निश्चय को उत्पन्न करता है यह आहारक समुद्घात है।

केवलियों के दण्ड-कपाट-प्रतर पूरण स्वभाव वाला सप्तम केवली समुद्घात है।

वही **णिच्छयणयदो** निश्चय नय की अपेक्षा से **असंखदेसो वा** असंख्यात लोक मात्र। वा शब्द यहाँ पर निश्चयवाची है। इस प्रकार स्वदेह प्रमाण का प्रतिपादन किया गया।

भावार्थ : समुद्घात के अतिरिक्त समय में व्यवहार नय से जीव स्वदेह प्रमाण है, क्योंकि उस में संकोच विस्तार की शक्ति है। उस शक्ति के बल से उस का आकार देह प्रमाण हो जाता है।

निश्चय नय से आत्मा असंख्यात प्रदेशी है।। 10।।

●—●—●

उत्थानिका : जीवलक्षणं अनन्तानन्तजीवास्ते च संसारावस्थाः भवन्तीत्याह –

गाथा : पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी विविहथावरे इंदी।

विग तिग चदु पंचक्खा तसजीवा होंति संखादी।। 11।।

समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।

बायरसुहुमे इंदिय सव्वे पज्जत्त इदरा य।। 12।।

टीका : पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी पृथिवीकायिका:, अपकायिकास्तेजकायिका:, वातकायिका:, वनस्पतिकायिकाश्च। **विविहथावरेइंदी** एते विविधा: स्थावरा: एकेन्द्रिया:, एतेषां किं स्वरूपम्?

अंडेसु पवड्ढंता गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारिसया तारिसया जीवा एगंदिया णेया॥

[पञ्चा. गा. 113]

एतेषामनुक्ता अपि समारोप्य प्राणा: कथ्यन्ते। तदेकेन्द्रियस्य कति प्राणा:? स्पर्शनेन्द्रियप्राण: कायबलप्राण उश्वासनिश्वासप्राण आयुप्राणश्चेति चत्वार:। ते चैकेन्द्रिया: बादरा: सूक्ष्मा: पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च। एतेषां लक्षणं कथ्यते, वाग्गोचरा: स्थूलाश्चिरस्थायिनो बादरा:, अवाग्गोचरा: सूक्ष्मा:, प्रतिक्षणविनाशिन: सूक्ष्मा:सप्रतिघाता बादरा: परैर्मूर्तद्रव्यैर्बाध्यमाना इत्यर्थ:। अप्रतिघाता: सूक्ष्मा: परैर्मूर्तद्रव्यैरबाध्यमाना:। पर्याप्तापर्याप्तयो: स्वरूपमाह–आहारशरीरेन्द्रिय आणप्पाणभाषामनसां परिपूर्णत्वे सति गर्भान्निर्गमणं पर्याप्तस्य लक्षणम्। एतेषामपरिपूर्णत्वे सति गर्भाच्च्यवनमपर्याप्तस्यलक्षणम्। गर्भ इत्युपलक्षणमेतत्। नत्वेकेन्द्रिया ग्राह्या:। इयं गाथा लेखनीया। तत्रैकेन्द्रियस्य आहारशरीरस्पर्शनेन्द्रियाण-प्राणाश्चत्वार: पर्याप्तय:। भाषा मनसोरावरणीयम्। पर्याप्तस्य षड्भि: परिपूर्ण:। **विगतिगचदुपंचक्खातसजीवा होंति संखादी।** द्वित्रिचतुपञ्चेन्द्रिया त्रससंज्ञाजीवा: शंखादयो ज्ञेया:। अत्र द्वीन्द्रिया: शंखादय:। तेषां कति प्राणा:? षट् प्राणा:, पूर्वोक्ताश्चत्वारो रसनभाषा द्वे, एते पर्याप्ता अपर्याप्ता:। अत्र पर्याप्तस्य आहारशरीरस्पर्शनेन्द्रियाण–प्राणभाषा: पञ्च, मनसोऽभाव:। अपर्याप्तस्य चत्वार: पर्याप्तय: भाषाया अभाव:। त्रीन्द्रिया: कुन्थुमत्कुणादय:, प्राणा: सप्त। पूर्वोक्ता: षट् प्राणा: घ्राणश्च। एते पर्याप्तापर्याप्ता:। अत्र पर्याप्तस्य पर्याप्तय: पञ्च मनसोऽभाव:। अपर्याप्तस्य पूर्ववत् चत्वार:। चतुरिन्द्रियस्य प्राणा: अष्टौ,

पूर्वोक्ताः सप्त चक्षुप्राणश्च। एते पर्याप्तापर्याप्ताः। अत्र पर्याप्तस्य पर्याप्तयः पञ्च। मनसोऽभावः। अपर्याप्तस्य पूर्ववच्चत्वारः। पञ्चेन्द्रियस्य तिर्यञ्चसंज्ञिनां प्राणा नव। पूर्वोक्ताष्टौ श्रोत्रप्राणश्च। एतेपर्याप्तापर्याप्ताः। अत्रापर्याप्तस्य पर्याप्तयः पञ्च, मनसोऽभावः। अपर्याप्तस्य पूर्ववच्चत्वारः। पञ्चेन्द्रियस्य संज्ञिनः प्राणाः दश, पूर्वोक्ता नव मनोबलप्राणश्च। एते पर्याप्तापर्याप्ताश्च। पर्याप्तस्य पर्याप्तयः षट्। अपर्याप्तस्य पर्याप्तयश्चत्वारः। भाषामनसोऽभावः। ते च जीवाः समनस्का अमनस्काश्च भवन्तीत्याह–**समणा अमणा णेया पंचिंदिय** समनस्का अमनस्काश्च भवति। तत्र तिर्यञ्चसमनस्का अमनस्काश्च। ये अमनस्कास्ते गोरखरादयो जालन्धरमरुदेशादिषु देशेषु दृश्यन्ते। **णिम्मणा परे सव्वे** एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-निर्मनसः। ननु तेऽमनस्कास्तदा कथ्यन्ते। तेषां पञ्चेन्द्रियाप्रवृत्तिर्यतो मनः पूर्वकेन्द्रियप्रवृत्तिरिति शास्त्रवचनम्। अत्रोत्तरमाह–सर्वेषामेव जीवानां स्वभावत एवाहारभयमैथुनपरिग्रहस्वरूप-संज्ञाचतुष्टयं विद्यत एव प्रतीतश्च दृश्यते। यथा वृक्षस्य जलसिञ्चनाद् वृद्धिः। कुठारायुधपुरुषदर्शनात्कम्पः। वनिताचरणत्राटकनात्पुष्पनिर्गमो वृक्षमूलप्ररोहावष्टम्भनिधानग्रहणमिति। तस्मात्तेषां मनोव्यापाररहिता प्रवृत्तिः। पुनः प्रोच्यते। तेषां सर्वथा मनसोऽभाव इति न, किन्तु शक्तिरूपत्वेन नास्ति। कुतः? पूर्वोपार्जितमतिज्ञानावरणकर्मोदयवशात्। सर्वथा यदि मनसोऽभावो भण्यते, तदान्य जन्मनि मनुष्यपर्याये गृहीते सति विमनस्कत्वमायाति। एवं सति सर्वज्ञवचनविरोधः स्यात्। यतः **सुरणरणेरइया समनस्काः** आगमे प्रतिपादिताः। तिर्यञ्चो विकल्पनीयाः। तस्मात् कर्मोदयवशात् व्यवहारनयापेक्षया तेषाममनस्कत्वं न परमार्थतः, इति स्थिते च।

उत्थानिका : जीवों के लक्षण के अनुसार अनन्तानन्त जीव संसारी अवस्था में हैं, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**पुढवि**] पृथिवी [**जल**] जल [**तेउ**] अग्नि [**वाऊ**] वायु [**वणप्फदी**] वनस्पति कायिक [**विविह**] अनेक [**थावर**] स्थावर [**एइंदी**] एकेन्द्रिय हैं। [**विगतिगचदुपंचक्खा**] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय [**संखादी**] शंख आदि [**तसजीवा**] त्रसजीव [**होंति**] होते हैं ॥ 11 ॥

[**पंचिंदिय**] पंचेन्द्रिय [**समणा**] सैनी [**अमणा**] असैनी हैं, ऐसा [**णेया**] जानना चाहिये [**परे**] शेष [**सव्वे**] सभी [**णिम्मणा**] असैनी हैं। [**एइंदी**] एकेन्द्रिय [**बायर**] बादर और [**सुहुम**] सूक्ष्म हैं [**सव्वे**] सर्व [**पज्जत्त**] पर्याप्त [**य**] और [**इदरा**] अपर्याप्त होते हैं।

टीकार्थ : पुढविजलतेउवाऊवणप्फदी पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। **विविहथावरेइंदी** ये विविध स्थावर एकेन्द्रिय हैं।

इन का क्या स्वरूप है?

अण्डे में वृद्धि पाने वाले प्राणी, गर्भ में वृद्धि पाने वाले प्राणी और मूर्च्छा को प्राप्त मनुष्य जैसे बुद्धिपूर्वक व्यापार से रहित होते हुए भी जीव हैं, वैसे ही एकेन्द्रिय भी जीव हैं।

यहाँ अनुक्त होते हुए भी प्राणों का कथन किया जाता है। उन एकेन्द्रियों के कितने प्राण हैं? स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबल प्राण, उच्छ्वास-निश्वास प्राण और आयुप्राण ये चार प्राण होते हैं। वे एकेन्द्रिय बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। इन का लक्षण कहते हैं।

वचनगोचर, स्थूल और चिरकाल तक स्थिर रहने वाले बादर होते हैं।

वचन के अगोचर, सूक्ष्म और प्रतिक्षण नष्ट होने वाले जीव सूक्ष्म होते हैं।

बादर जीव सप्रतिघात होते हैं अर्थात् पर मूर्त द्रव्यों के द्वारा जो बाधित होते हैं, वे जीव बादर हैं। सूक्ष्म जीव प्रतिघात रहित होते हैं अर्थात् अन्य मूर्तिक द्रव्यों के द्वारा बाधा को प्राप्त नहीं होते।

पर्याप्तक और अपर्याप्तक के स्वरूप को कहते हैं। आहार-शरीर-इन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के परिपूर्ण होने पर गर्भ से निकलना पर्याप्तक का लक्षण है। इन की [छह पर्याप्तियों की] पूर्णता न होते हुए भी गर्भ से निकलना अपर्याप्त का लक्षण है। यहाँ गर्भ शब्द उपलक्षण मात्र है। एकेन्द्रिय में इसे ग्रहण नहीं करना चाहिये। [ये गाथा लिखनी चाहिये।]

उस में एकेन्द्रिय के आहार-शरीर-स्पर्शनेन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ हैं। उन के भाषा व मन सम्बन्धित आवरण होते हैं।

पर्याप्तक की छहों पर्याप्तियाँ पूर्ण होती हैं।

वियतिगचदुपंचक्खातसजीवा होंति संखादी दो-तीन-चार और पाँच इन्द्रिय त्रस संज्ञा को प्राप्त जीव शंखादि हैं - ऐसा जानना चाहिये।

उस में शंखादि द्वीन्द्रिय जीव हैं। उन में कितने प्राण हैं? छह हैं। पूर्वोक्त चार [स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास] तथा रसनेन्द्रिय और भाषा ये दो। ये जीव पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों को आहार-शरीर-स्पर्शनेन्द्रिय-श्वासोच्छ्वास और भाषा ये पाँच पर्याप्तियाँ हैं, मन पर्याप्ति का अभाव है।

अपर्याप्तक की भाषा के अतिरिक्त उपर्युक्त चार पर्याप्तियाँ होती है।

कुन्थु, खटमलादि त्रीन्द्रिय जीव हैं, इन के सात प्राण होते हैं - पूर्वोक्त छह और घ्राणेन्द्रिय। ये जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तकों की पाँच पर्याप्तियाँ होती है, मन नहीं होता। अपर्याप्तकों को पूर्ववत् चार पर्याप्तियाँ होती हैं।

चतुरिन्द्रिय के आठ प्राण हैं, पूर्वोक्त सात और चक्षुरिन्द्रिय। ये जीव

भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों को पाँच पर्याप्तियाँ होती है। मन नहीं होता। अपर्याप्तक को पूर्ववत् चार पर्याप्तियाँ होती है।

पंचेन्द्रिय असंज्ञी तिर्यंच के नौ प्राण होते हैं, पूर्वोक्त आठ और श्रोत्रेन्द्रिय। ये जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। असंज्ञी पर्याप्तक जीवों को पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं, मन नहीं होता। अपर्याप्तक जीवों को पूर्ववत् चार पर्याप्तियाँ होती है।

पंचेन्द्रिय संज्ञी के दस प्राण होते हैं, पूर्वोक्त नौ और मनोबल। ये जीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं। पर्याप्तक जीवों को छह पर्याप्तियाँ होती है। अपर्याप्तक जीवों की चार पर्याप्तियाँ होती है। भाषा और मन का अभाव होता है।

वे जीव समनस्क और अमनस्क होते हैं - ऐसा कहते हैं, **समणा अमणा णेया पंचिंदिय** समनस्क और अमनस्क होते हैं। उस में तिर्यंच समनस्क और अमनस्क होते हैं। जो अमनस्क हैं, वे गोरखरादि जालन्धर और मेरु आदि देशों में देखे जाते हैं। **णिम्मणा परे सव्वे** एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मन रहित होते हैं।

शंका : वे जीव अमनस्क तब कहलाते हैं, जब उन के पंचेन्द्रियों की अप्रवृत्ति होती हो, क्योंकि मनःपूर्वक ही इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है, ऐसा शास्त्र का वचन है।

समाधान : यहाँ उत्तर देते हैं - सभी जीवों को स्वभाव से ही आहार-भय-मैथुन-परिग्रह रूप चार संज्ञाएँ होती हैं - ऐसा प्रतीति में आता है। जैसे वृक्ष की वृद्धि जलसिंचन से होती है, कुल्हाड़ी और पुरुष आदि को देखने से वृक्ष में कम्पन होता है, स्त्रियों के पाद प्रहार से पुष्प खिलते हैं, वृक्ष मूल धन की ओर बढ़ते हैं। इसलिए उन की मनोव्यापार से रहित प्रवृत्ति होती है। पुनः कहते हैं कि -

उन को [असंज्ञियों को] सर्वथा मन का अभाव हो, ऐसा नहीं है किन्तु मन शक्ति रूप से नहीं है। किस कारण से? पूर्वोपार्जित मतिज्ञानावरण

कर्मोदय के वश से। यदि सर्वथा मन का अभाव कहा जायेगा, तो अन्य जन्म में मनुष्य पर्याय ग्रहण करने पर भी मन रहितता का प्रसंग आयेगा, ऐसा होने पर सर्वज्ञ के वचन का विरोध होगा। क्योंकि देव-मनुष्य और नारकी समनस्क होते हैं ऐसा आगम में प्रतिपादित किया गया है। तिर्यंचों में समनस्कता और अमनस्कता रूप दोनों ही विकल्प हैं। इसलिए कर्मोदयवशात् व्यवहार नय की अपेक्षा से उन का अमनस्कत्व है, परमार्थ से नहीं। ऐसा सिद्ध होता है।

भावार्थ : पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव स्थावर हैं तथा दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस हैं।

जीव समास चौदह हैं – एकेन्द्रिय के बादर सूक्ष्म, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय व पंचेन्द्रिय के संज्ञी-असंज्ञी। ये सातों ही पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं।। 11, 12।।

पाठभेद :	बायर	=	बादर
	इंदिय	=	इंदी।। 11, 12।।

विशेष : टीकाकार के द्वारा बारहवीं गाथा की द्वितीय पंक्ति की टीका नहीं की गई है। **[सम्पादक]**

●—●—●

उत्थानिका : मार्गणागुणस्थानैः संसारिणो ज्ञातव्या इत्याह –

गाथा : मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। 13।।

टीका : ते च जीवा चतुर्दशमार्गणाभिश्चतुर्दशगुणस्थानैश्च ज्ञातव्या भवन्ति। कथंभूताः? संसारिणा। कदा? **असुद्धणया** अशुद्धनयापेक्षया, **हु**

पुनः। **सव्वे सुद्धा सुद्धणया** शुद्धनिश्चयनयापेक्षया सर्वे जीवाः शुद्धाः। अनन्तचतुष्टयात्मका इत्यर्थः। मार्गणाः प्राह –

गइ इंदिये च काए जोए वेए–कसायणाणे य।
संयमदंसणलेस्सा भविया सम्मत्तसण्णिआहारे॥

[गो. जी. 142]

अत्र गत्यादिषु जीवा अन्विष्यन्ते। **गइ** देवगति मनुष्यनारक-तिर्यक्-सिद्धगतिश्चेति **इंदिया** एकेन्द्रिय – द्वीन्द्रिय – त्रीन्द्रिय – चतुरिन्द्रिय – पञ्चेन्द्रियाः, अतीन्द्रिया: सिद्धा इत्यर्थः। **काए**-पृथ्वीकायिका:, अपकायिकाः, तेजकायिकाः, वातकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः, त्रसकायिकाः, अकायिकाश्चेति। **जोए**–सत्यमनयोगी। मृषामनयोगी। सत्यमृषामनयोगी। असत्यमृषामनयोगी। सत्यवचोयोगी। असत्यवचोयोगी। सत्यमृषावचोयोगी, असत्यमृषावचोयोगी। औदारिककाययोगी। औदारिकमिश्रकाययोगी। परमौदारिककाययोगी च। तत्रौदारिको मनुतिरश्चाम्। मिश्री अपर्याप्तानाम्। परमौदारिकः केवलिनाम्। वैक्रियककाययोगी। वैक्रियकमिश्रकाययोगी। तत्र वैक्रियको देवनारकाणाम्। मिश्रः अपर्याप्तानाम्। आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी। तत्राहारककाययोगपरमर्द्धिमाहात्म्यषष्ठगुणस्थाने महर्षीणां भवति। यदा पदपदार्थसन्देहः समुत्पद्यते तदा उत्तमाङ्गे पुत्तलको निर्गच्छति। यत्रस्थ तीर्थङ्करदेवमन्तर्मुहुर्तमध्ये पश्यति। तत्प्रस्तावे यतेर्निश्चयः समुत्पद्यते। पुनस्तत्रैव प्रवेशं करोति। मिश्री पर्याप्तपद्मलेश्या। स्वपरपक्षरहितो निदानशोकभयरागद्वेषपरिवर्जितः शुक्ललेश्या इति। **भविया** सिद्धयोग्याः जीवाः भव्याः, तद्विपरीता अभव्याः। भव्यत्वाभव्यत्वरहिताश्च। **सम्मत्त**–आप्तप्रतिपादितेषु पदार्थेषु जिनाज्ञया

शास्त्राकर्णनात् श्रद्धापर:। उपशमसम्यग्दृष्टि:, क्षायिकसम्यग्दृष्टि:, क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टि:, सासादनसम्यग्दृष्टि:, सम्यग्मिथ्यादृष्टि:, मिथ्यादृष्टिश्चेति। तत्र सम्यक्त्वस्य किमुपादानं कृतम्? अत्रोच्यते। यथा आम्रवने मध्ये निम्बोऽपि तद्गृह्णेन गृह्यते, यतो मिथ्यात्व त्रिधा मिथ्यात्व-सासादन-सम्यग्मिथ्यात्वभेदात्। को दृष्टान्त:? यथा यन्त्रमध्ये निक्षिप्ता: कोद्रवा: केचित्समस्ता: निर्गच्छन्ति, केचिदर्द्धदलिता:, केचिच्चूर्णीभूता: इति। एतदेव व्याख्येयम्। तत्रानन्तानुबन्धिक्रोध-मानमायालोभमिथ्यात्व-सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वसप्तानां प्रकृतीनामुप-शमादौपशमिकसम्यग्दृष्टि:। अत्र सम्यक्त्वस्यावरणोपशमो न सम्यक्त्वस्य मूलकारणस्योपशम:। एतासां सप्तानां प्रकृतीनां क्षयात्क्षायिक-सम्यग्दृष्टि:। अनन्तानुबन्धादीनां षण्णां उदयाभावात् क्षय: सदवस्थो-पशमात्सम्यक्त्वप्रकृत्युदयाद्वेदकसम्यग्दृष्टि:। सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वमद्यापि न प्राप्नोति, अन्तराले वर्तमान: सासादनसम्यग्दृष्टि:। सर्वे देवा: वन्दनीया: न च निन्दनीया:, इति मिश्रपरिणाम: सम्यग्मिथ्या-दृष्टि:। आप्तागमपदार्थेषु विपरीताभिनिवेशो मिथ्यादृष्टि:। सण्णि मनोबलेन शिक्षालापग्राही संज्ञी, तद्विपरीत असंज्ञी। संज्ञासंज्ञत्वरहिताश्च। आहारे विग्रहगतिप्राप्ता: जीवा: समुद्घातकेवलिनश्चायोगिन: सिद्धाश्च अनाहारा:। शेषा आहारका: जीवा:। एवं चतुर्दशमार्गणा व्याख्याता:।

गुणठाणेहिं य। चतुर्दशभिर्गुणस्थानैश्च जीवा: ज्ञातव्या:। तत्राप्तागम-पदार्थानामरुचयो मिथ्यादृष्टय:। सम्यक्त्वं परित्यज्य मिथ्यात्वमप्राप्तान्तराले वर्तमाना: सासादनसम्यग्दृष्टय:। सर्वे देवा वन्दनीया न च निन्दनीया:, सम्यग्मिथ्यादृष्टय:। प्राणेन्द्रियेष्वविरतास्तत्त्वश्रद्धापरा असंयता: सम्यग्दृष्टय:। त्रसवधाद्विरता: स्थावरवधादविरता:

संयतासंयतसम्यग्दृष्टयः। व्यक्ताव्यक्तविकथाकषायेन्द्रियनिद्रा-प्रणयप्रमादवशा ते महाव्रतधारकाः प्रमत्तसंयताः। नष्टाशेषप्रमादव्रतशीलगुणान्विता ध्यानोपयुक्ता अप्रमत्तसंयताः। अतीतसमयस्थितपरिणामैः सर्वथा असदृशपरिणामाः मोहस्योपशमक्षपणोद्यताः अपूर्वकरणास्ते चोपशमकाः क्षपकाश्च। एकस्मिन् समये संस्थानादिभिरेव परिणामैः परस्परं न व्यावर्तते, इत्यनिवृत्तयस्ते क्षयोपशमकाः क्षपकाश्च। पूर्वापूर्वस्पादकं यद्भेदकत्वं तस्मादनन्तगुणहीनाः, सूक्ष्मलोभे स्थिताः, सूक्ष्मसाम्परायास्ते चोपशमकाः क्षपकाश्च। कतकफलसंयोगादवस्थितपङ्कस्वच्छजलवदुपशान्ताशेषमोहा उपशान्तकषायाः वीतरागाः छद्मस्था इत्यर्थः। छद्म इति ज्ञानावरणदर्शना-वरणस्यास्तित्वात्। स्फटिकमणिभाजनस्थितनिर्मलजलवत् क्षपितशेषमोहाः विशुद्धपरिणामाः क्षीणकषायाः वीतरागाः छद्मस्थाः। केवलज्ञानप्रकाश-ध्वस्ताज्ञानान्धकारः, नवकेवललब्धिसमन्वितः, द्रव्यमनोवाक्काययोगा-सहायाद्दर्शनज्ञाने युगपज्जातकाः सयोगकेवलिनः। लब्धयः –

दाणे लाहे भोए उवभोए वीरियसम्मत्ते।
दंसणणाणचरित्ते एदे णव जीवसब्भावा॥

चतुरशीतिलक्षणगुणाधिपतयः निरुद्धा अशेषयोगास्रवा अयोगि-केवलिनः। एतानि चतुर्दशगुणस्थानानि।

उत्थानिका : मार्गणा और गुणस्थानों के द्वारा संसारी जीवों को जानना चाहिये, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**तह**] तथा [**संसारी**] संसारी [**असुद्धणया**] अशुद्धनय से [**चउदसहि**] चौदह [**मग्गणगुणट्ठाणेहि**] मार्गणा व गुणस्थानों की अपेक्षा से [**चौदह प्रकार के**] [**हवंति**] होते हैं। [**सुद्धणया**] शुद्धनय की अपेक्षा

से [**सव्वे**] सभी [**हु**] नियमत: [**सुद्धा**] शुद्ध [**विण्णेया**] जानने चाहिये।। 13।।

टीकार्थ : और वे जीव चौदह मार्गणाओं और गुणस्थानों के द्वारा जानने चाहिये। कौन से जीव? संसारी। कब? **असुद्धणया** अशुद्धनय की अपेक्षा से। **हु** पुनः **सव्वे सुद्धा सुद्धणया** शुद्ध नय की अपेक्षा से सभी जीव शुद्ध हैं - अनन्तचतुष्टयात्मक हैं, यह अर्थ है।

मार्गणाओं को कहते हैं –

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक ये चौदह मार्गणाएं हैं।

यहाँ गत्यादि में जीवों का अन्वेषण किया जाता है।

गइ-देवगति-मनुष्य-नरक-तिर्यञ्च और सिद्धगति।

इंदिया-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय और अतीन्द्रिय सिद्ध।

काए-पृथ्वीकायिक-जलकायिक-अग्निकायिक-वायुकायिक-वनस्पतिकायिक-त्रसकायिक और अकायिक।

जोए-सत्यमनोयोगी, असत्यमनोयोगी, उभयमनोयोगी, अनुभयमनोयोगी, सत्यवचोयोगी, असत्यवचोयोगी, उभयवचोयोगी, अनुभयवचोयोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, परमौदारिक काययोगी। मनुष्य और तिर्यंचों को औदारिक काययोग होता है। मनुष्य और तिर्यंच अपर्याप्तकों को औदारिक मिश्र काययोग होता है। केवलियों को परमौदारिक काययोग होता है।

वैक्रियक काययोगी, वैक्रियक मिश्रकाययोगी। उस में देव-नारकियों को वैक्रियक काययोग होता है। उन्हीं को ही अपर्याप्तक अवस्था में वैक्रियकमिश्र काययोग होता है।

आहारक काययोगी, आहारक मिश्र काययोगी। उस में परम ऋद्धि के महात्म्य से षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनियों को आहारक काययोग होता है। जब पद या पदार्थ में सन्देह उत्पन्न होता है, तब उत्तम अंग से पुतला निकलता है। जहाँ भी तीर्थंकर देव होते हैं, उन्हें वह अन्तर्मुहूर्त में देखता है। उस कारण से यति को निश्चय उत्पन्न हो जाता है। वह पुतला पुन: शरीर में प्रवेश करता है।

[लिपिकार के द्वारा आहारक मिश्र काययोग कार्मण काययोग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन का प्रकरण छूट गया है। लेश्या के प्रकरण में भी अपूर्णता है। हम जो कुछ समझ पाये हैं, उसे विशेष में लिख रहे हैं - कृपया पाठक उसे अवश्य पढ़ें। – सम्पादक]

मिश्र पर्याप्तक को पद्मलेश्या होती है। स्व-पर पक्ष से रहित, निदान-शोक-भय-राग-द्वेष से रहित शुक्ललेश्या है।

भविया – सिद्ध के योग्य जीव भव्य हैं, उस से विपरीत जीव अभव्य हैं। सिद्ध जीव भव्यत्व और अभव्यत्व से रहित होते हैं।

सम्मत्त – आप्त के द्वारा प्रतिपादित पदार्थों में, जिनाज्ञा से शास्त्र को श्रवण कर श्रद्धा करना, सम्यक्त्व है।

उपशम सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि।

उस में सम्यक्त्व के द्वारा क्या उपादान किया गया? उसे कहते हैं। जैसे आम्रवन में निम्ब का भी ग्रहण हो जाता है। मिथ्यात्व तीन प्रकार का है – मिथ्यात्व-सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व। इस के लिए कौन सा दृष्टान्त है?

जैसे यन्त्र में डाले गये कोद्रव में से कुछ कोद्रव पूर्ण रूप से निकलते हैं, कुछ अर्द्ध दलित निकलते हैं, कुछ चूर्ण हो कर निकलते हैं। इसी प्रकार समझना चाहिये।

अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ-मिथ्यात्व-सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यहाँ सम्यक्त्व के आवरण का उपशम है। सम्यक्त्व के मूल कारणों का उपशम नहीं है।

इन सात प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है।

अनन्तानुबन्धी आदि छह के उदयाभाव से क्षय, सदवस्था रूप उपशम तथा सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

सम्यक्त्व से पतित होने पर जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता, ऐसा जो जीव अन्तराल में विद्यमान है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है।

सभी देव वन्दनीय है, कोई निन्दनीय नहीं है, ये मिश्रपरिणाम जिस के हैं, वह सम्यग्मिथ्यादृष्टि है।

आप्त-आगम-पदार्थों में विपरीत श्रद्धान करने वाला मिथ्यादृष्टि है।

सण्णि मन के बल से शिक्षा व वचन का ग्रहण करने वाला संज्ञी है, उस से विपरीत जीव असंज्ञी है। सिद्ध संज्ञी और असंज्ञीत्व से रहित हैं।

आहारे विग्रहगति प्राप्त जीव, समुद्घात केवली, अयोगी और सिद्ध अनाहारक होते हैं। शेष जीव आहारक होते हैं।

इस प्रकार चौदह मार्गणाओं का व्याख्यान किया गया।

गुणठाणेहि य चौदह गुणस्थानों के द्वारा जीवों का ज्ञान करना चाहिये।

जिस की आप्त-आगम-पदार्थों में अरुचि है, वह मिथ्यादृष्टि है।

सम्यक्त्व को छोड़ कर मिथ्यात्व प्राप्ति के अन्तराल में जो स्थित है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि है।

सभी देव वन्दनीय हैं, कोई निन्दनीय नहीं हैं, ऐसा मानने वाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि है।

प्राणी और इन्द्रियों के संयम से अविरत, श्रद्धान युक्त जीव असंयत सम्यग्दृष्टि है।

त्रसवध से विरत, स्थावर वध से अविरत जीव संयतासंयतसम्यग्दृष्टि है।

व्यक्त-अव्यक्त विकथा-कषाय-इन्द्रिय-निद्रा- प्रणय रूप प्रमाद के वश महाव्रती प्रमत्तसंयत है।

नष्ट हो चुके हैं सम्पूर्ण प्रमाद जिस के, ऐसे व्रत-शील से समन्वित, ध्यानोपयुक्त साधु अप्रमत्तसंयत हैं।

जहाँ अतीत काल में स्थित परिणामों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न परिणाम हैं, मोहनीय के उपशम या क्षपण में उद्यतता वह अपूर्वकरण हैं। वे उपशमक और क्षपक ऐसे दो प्रकार के हैं।

एक समय में संस्थानादि परिणामों के द्वारा परस्पर में निवृत्ति को प्राप्त नहीं होते, वे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती हैं। वे उपशमक और क्षपक होते हैं।

पूर्व-पूर्व की अपेक्षा से जिन का जैसे एकत्व है, उन से अनन्त गुण हीन सूक्ष्मलोभ में जो स्थित हैं, वे सूक्ष्मसाम्पराय हैं। वे उपशमक और क्षपक होते हैं।

कतक फल के संयोग से जल में कीचड़ नीचे बैठ चुका है, उसी प्रकार उपशान्त हो चुका है अशेष मोह जिन का, वे उपशान्त कषाय, वीतराग, छद्मस्थ हैं। छद्म यानि ज्ञानावरण और दर्शनावरण। उन का अस्तित्व है जिन में, वे छद्मस्थ हैं।

स्फटिकमणि के बर्तन में स्थित निर्मल जल के समान जिन्होंने सम्पूर्ण मोह का क्षय किया है, वे विशुद्ध परिणामी क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ हैं।

केवलज्ञान के प्रकाश से ध्वस्त किया है अज्ञान अन्धकार जिन्होंने, जो नव केवल लब्धियों से समन्वित हैं, द्रव्य मन-वचन-काय योग के सहयोग के बिना ही जिन को लब्धियाँ, दर्शन और ज्ञान युगपत् होता है, वे सयोग केवली हैं।

दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये नौ जीव के स्वभाव हैं।

चौरासी लाख गुणों के अधिपति, जिन के अशेष योग निरोध को प्राप्त हो चुके हैं, वे अयोगकेवली हैं।

ये चौदह गुणस्थान होते हैं।

भावार्थ : अशुद्धनय से जीव चौदह गुणस्थान एवं चौदह मार्गणास्थानों की अपेक्षा से चौदह-चौदह भेद वाले हैं।

शुद्धनय की अपेक्षा से सभी जीव शुद्ध हैं।। 13॥

विशेष : टीकाकार ने औदारिक-औदारिक मिश्र व परमौदारिक ऐसे तीन भेद किये हैं। काययोग के सात भेदों में परमौदारिक काययोग नहीं है।

[जिन का वर्णन टीका में छूट गया है, उन का व्याख्यान]

आहारक मिश्र काययोग – आहारक शरीर जब तक पूर्ण नहीं होता, तब तक के काययोग को आहारक मिश्र कहते हैं। परमऋद्धि संपन्न छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों को ही यह काययोग होता है।

कार्मणकाययोग : कार्मण शरीर के निमित्त से होने वाले योग को कार्मण काययोग कहते हैं। यह काययोग विग्रह गति में तथा लोकपूरण और प्रतर समुद्‌घात में होता है।

वेदमार्गणा : वेद कर्म की उदीरणा होने पर जीव स्त्रीभाव-पुरुषभाव और नपुंसक भाव का वेदन करता है। उस वेद कर्म के उदय से होने वाले भाव को वेद कहते हैं।

वेद के तीन भेद हैं - पुंवेद - स्त्रीवेद और नपुंसक वेद।

नारकी जीव और सम्मूर्च्छिम जीव नपुंसक वेदी होते हैं।

भोगभूमिज तिर्यंच-मनुष्यों में तथा समस्त देवों में पुंवेद और स्त्रीवेद होता है। कर्मभूमिज संज्ञी-असंज्ञी तिर्यंच व मनुष्य तीनों ही वेद वाले होते हैं।

कषायमार्गणा : क्रोध-मान-माया और लोभ आत्मगुणों को कसते हैं, अतः उन्हें कषाय कहते हैं। अनन्तानुबन्धी-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान और संज्वलन के भेद से क्रोध-मान-माया-लोभ के चार-चार भेद हैं।

क्रोध-मान-माया कषाय प्रथम गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक होती है। लोभ कषाय आदि के दस गुणस्थानों तक रहती है।

ज्ञानमार्गणा : पाँच ज्ञान एवं तीन अज्ञान इस प्रकार ज्ञानमार्गणा के 8 भेद हैं।

पहले और दूसरे गुणस्थान में तीन अज्ञान होते हैं।

चतुर्थ गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान पर्यन्त मति-श्रुत और अवधिज्ञान होता है।

मनःपर्यय ज्ञान छठे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है। तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में व सिद्धों में केवलज्ञान होता है।

संयममार्गणा : असंयम, संयमासंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात ये सात भेद संयममार्गणा के हैं।

प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त असंयम रहता है।

पाँचवें गुणस्थान में देशसंयम पाया जाता है।

सामायिक और छेदोपस्थापना छठे गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक होता है।

परिहारविशुद्धि संयम छठे-सातवें गुणस्थान में होता है।

दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्पराय संयम होता है।

अन्त के चार गुणस्थानों में व सिद्धों में यथाख्यात संयम होता है।

दर्शनमार्गणा : इस का वर्णन गाथा क्र. 4 में किया गया है।

लेश्यामार्गणा : कषायानुरंजित योग की प्रवृत्ति लेश्या है। उस के छह भेद हैं - कृष्ण-नील-कापोत-पीत-पद्म-शुक्ल।

प्रथम से चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों के छहों लेश्याएं होती हैं। पाँचवें से सातवें गुणस्थान तक तीन शुभलेश्याएं होती हैं। 8वें गुणस्थान से 13वें गुणस्थान तक शुक्ललेश्या होती है। अयोग केवली अवस्था एवं सिद्धों में कोई लेश्या नहीं होती।

●—●—●

उत्थानिका : ते च जीवा: सकलकर्मक्षयात्सिद्धा भवन्तीत्याह –

गाथा : **णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।**
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता॥ 14॥

टीका : ते च पूर्वोक्ता: जीवा: सिद्धा: भवन्ति। कथंभूता सत:? **णिक्कम्मा** ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयमोहनीयआयुर्नामगोत्रान्तराया इत्यष्टकर्मरहिता:। **अट्ठगुणा**–

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं॥

अत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वसंज्ञानां सप्तप्रकृतीनां क्षय: क्षायिकं सम्यक्त्वम्। अशेषविशेषत: सकलपदार्थेषु रुचि इत्यर्थ:। तस्माच्च ये उत्पन्ना: दर्शनज्ञानमूलभूता: परमानन्दस्वरूपसंवेदका आत्मपरिणामास्ते एव सम्यक्त्वम्। एतदेवानन्तसुखमुच्यते। युगपत्सकलपदार्थज्ञातृत्वं ज्ञानम्। युगपदशेष-पदार्थावलोकनं दर्शनम्। उक्तानामनन्तासुखादीनां सप्तानां गुणानां

निरवधिकालनिरवधिमर्यादिकृत्य एकसमयान्तरमपि न कदाचिदन्यथाभावो वीर्यम्। केवलज्ञानी एव यदमूर्तसिद्धस्वरूपं परिचेत्तुं शक्नोति नान्यः सूक्ष्मत्वम्। एकस्मिन्सिद्धस्वरूपे असंख्यातानां सिद्धानामेकत्रसमवस्थिता-नामवकाशोऽवगाहनम्। नैव गुरुत्वं नैव लघुत्वमगुरुलघुत्वम्। असंख्यातानां सिद्धानामेकत्रसमवस्थितानां परस्परसंघर्षणाभावोऽव्याबाधं चेति। एवमष्टगुणसमन्विताः। **किंचूणा चरमदेहदो** चरमदेहतः किंचूनत्रिभागेन हीनाः, **लोयाग्गठिदा** लोकाग्रस्थिताः, **णिच्चा** नित्याः तेषां काले कल्प इति गतेऽपि गतिप्रच्युतिर्नास्ति। तथा **उप्पादवएहि संजुत्ता** उत्पादव्ययाभ्यां युक्तास्तौ द्वौ चोत्पादव्ययावागोचरौ सूक्ष्मौ, प्रतिक्षणविनाशिनौ। उक्तं च –

सूक्ष्मद्रव्यादभिन्नाश्च व्यावृताश्च परस्परम्।
उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते जलकल्लोलवज्जले॥

उत्थानिका : और वे जीव सकल कर्मों के क्षय से सिद्ध होते हैं, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**णिक्कम्मा**] कर्मरहित [**अट्ठगुणा**] आठ गुणों से सहित [**चरमदेहदो**] चरम देह से [**किंचूणा**] किंचित् न्यून [**णिच्चा**] नित्य [**उप्पादवएहि**] उत्पाद और व्यय से [**संजुत्ता**] संयुक्त [**लोयाग्गट्ठिदा**] लोकाग्र पर स्थित [**सिद्धा**] सिद्ध हैं।। 14॥

टीकार्थ : और वे पूर्वकथित जीव सिद्ध होते हैं। किस प्रकार होते हैं? **णिक्कम्मा** ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-वेदनीय-मोहनीय-आयु-नाम-गोत्र-अन्तराय इन आठ कर्मों से रहित हैं। **अट्ठगुणा –**

सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व ये आठ गुण सिद्धों के होते हैं।

उस में अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ-मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति नामक सप्त प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है। अशेष रूप से सम्पूर्ण पदार्थों की रुचि यह इस का अर्थ है। उस से जो उत्पन्न होते हैं, दर्शन-ज्ञान के मूल हैं, परमानन्द स्वरूप के सम्वेदक हैं, ऐसे आत्म परिणाम ही सम्यक्त्व हैं।

यही अनन्त सुख कहलाता है।

युगपत् सम्पूर्ण पदार्थों का जानना, ज्ञान है।

युगपत् सम्पूर्ण पदार्थों का अवलोकन दर्शन है।

उक्त अनन्त सुखादि सप्त गुणों का निरवधिकाल व निरवधि मर्यादा कर के एक समय भी अन्यथाभाव को प्राप्त न होना, वीर्य है।

केवलज्ञानी ही जो अमूर्त सिद्धस्वरूप हैं, उस को (सिद्ध स्वरूप को) जानने में शक्य हैं, अन्य नहीं, यही सूक्ष्मत्व है।

एक सिद्धस्वरूप में असंख्यात सिद्धों का एकत्र एक जगह अवकाश प्राप्त करना, अवगाहन गुण है।

न गुरु है, न लघु है - यही अगुरुलघुत्व है।

असंख्यात सिद्धों का एकत्र रहते हुए परस्पर संघर्षण का अभाव अव्याबाध गुण है। इस प्रकार सिद्ध अष्ट गुणों से समन्वित हैं।

किंचूणा चरमदेहदो चरम देह से किंचित् कम, त्रिभाग से हीन **लोयाग्गठिदा** लोकाग्रस्थित **णिच्चा** नित्य, कल्पकाल व्यतीत होने पर भी उन की सिद्धालय से प्रच्युति नहीं होती। तथा **उप्पादवएहिं संजुत्ता** उत्पाद और व्यय से युक्त हैं। वह उत्पाद-व्यय वचन के अगोचर हैं, सूक्ष्म हैं, प्रतिसमय विनाशी हैं।

कहा भी है कि –

जैसे जल में कल्लोलें उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार द्रव्य में उत्पाद और व्यय होता है। वे दोनों सूक्ष्म हैं, द्रव्य से अभिन्न हैं, परन्तु परस्पर में भिन्न हैं।

भावार्थ : सिद्ध प्रभु अष्ट कर्मों से रहित, अष्ट गुणों से सहित, अन्तिम शरीर से कुछ कम प्रमाण वाले, उत्पाद-व्यय से सहित, नित्य, लोकाग्र में स्थित होते हैं।। 14 ।।

पाठभेद : लोयग्गट्ठिदा = लोयग्गट्ठिदा

उप्पादवएहि = उप्पादवएहिं ।। 14 ।।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं जीवद्रव्यं व्याख्याय अजीवद्रव्यपञ्चप्रकारं स्वरूपमाह –

गाथा : अज्जीओ पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासो।

कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु।। 15 ।।

टीका : पुद्गलमूर्तः रूपादिगुणः, शेषाः पुनरमूर्ताः। अत्र व्याख्यानं पूर्वमेव कृतम्।

उत्थानिका : अब जीवद्रव्य का व्याख्यान करने के बाद अजीवद्रव्य के पाँच प्रकारों का स्वरूप कहते हैं –

गाथार्थ : [**पुण**] पुनः [**पुग्गल**] पुद्गल [**धम्मो**] धर्म [**अधम्म**] अधर्म [**आयासो**] आकाश [**कालो**] काल [**अज्जीओ**] अजीव [**णेओ**] जानना चाहिये [**रूवादिगुणो**] रूपादिगुणों से युक्त [**पुग्गल**] पुद्गल [**मुत्तो**] मूर्तिक है [**दु**] और [**सेसा**] शेष [**अमुत्ति**] अमूर्तिक है।। 15 ।।

टीकार्थ : पुद्गल द्रव्य रूपादिगुणों से युक्त होने से मूर्तिक है। शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। शेष व्याख्यान पूर्व में ही किया जा चुका है।

भावार्थ : पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच अजीवद्रव्य हैं। रूपादि गुणों से सहित होने के कारण पुद्गल मूर्तिक है। शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। इन द्रव्यों का वर्णन प्रथम गाथा में किया जा चुका है।। 15।।

पाठभेद : अज्जीओ = अज्जीवो।
आयासो = आयासं।। 15।।

●—●—●

उत्थानिका : तस्य पुद्गलस्य किं स्वरूपं पर्याया इत्याह –

गाथा : सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।। 16।।

टीका : पुग्गलदव्वस्स पज्जाया एते पुद्गलद्रव्यस्य पर्याया:, के ते? आत्मन: परिस्पंदान्नानाप्रकाराणुसंघटनात्ताल्वोष्ठपुटव्यापारेण करचरणकाष्ठ-पाषाणादिपरस्परं संघर्षणे च निष्पद्यते शब्द:। **बंधो** स्निग्धं परमाणुद्वयेन सह रूक्षपरमाणूनां चतुर्णां संश्लेष: एकेन स्निग्धेन सह त्रयाणां रूक्षाणां संश्लेष:, स्निग्धपरमाणुत्रयेण सह पंचानां रूक्षाणां संश्लेष इति, बंधमुपलक्षणमेतत्, **सुहुमो** परमाणु: सूक्ष्म:, **थूलो**, स्कन्धरूपत्वस्थूल:, **संठाणभेद**, समचतुरस्रसंस्थानं, न्यग्रोधपरिमण्डल-संस्थानं, स्वातिसंस्थानं वामलूराकृतिरित्यर्थ:, वामनसंस्थानं, हुंण्डकसंस्थानं चर्मकरदृतिरिव प्रकृतिरित्यर्थ:। कुब्जकसंस्थानमिति, **तम** अन्धकार:, **छाया** वृक्षादिभवा, **उज्जोदा** ताराचन्द्रमणिमाणिक्यादिभवा। **आदव** आतपोऽग्निसूर्यभव:।

उत्थानिका : उस पुद्गल की पर्यायों का क्या स्वरूप है? सो कहते हैं –

गाथार्थ : [**सद्दो**] शब्द [**बंधो**] बंध [**सुहुमो**] सूक्ष्म [**थूलो**] स्थूल [**संठाण**] संस्थान [**भेद**] भेद [**तम**] तम [**छाया**] छाया [**उज्जोद**] उद्योत [**आदव**] आतप [**सहिया**] सहित [**पुग्गलदव्वस्स**] पुद्गल द्रव्य की [**पज्जाया**] पर्यायें हैं।। 16।।

टीकार्थ : पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ये पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं। वे कौन सी? आत्मा के परिस्पंद से, नाना प्रकार के अणुओं के संघटन से, तालु-ओष्ठ आदि के व्यापार से, हाथ-पैर-लकड़ी-पाषाण आदि के परस्पर घर्षण से शब्द उत्पन्न होता है। **बंधो** स्निग्ध दो परमाणुओं के साथ चार रूक्ष परमाणुओं का संश्लेष, एक स्निग्ध के साथ तीन रूक्षों का संश्लेष, तीन स्निग्ध परमाणु के साथ पाँच रूक्ष परमाणुओं का संश्लेष, यह बन्ध का उपलक्षण है। **सुहुमो** सूक्ष्म परमाणु **थूलो** स्कन्ध रूप होने से स्थूल, **संठाणभेद** समचतुरस्त्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान [सर्प की बांबी के समान आकृति] वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान [चमड़े की मशक के समान आकृति] कुब्जक संस्थान **तम** अंधकार **छाया** वृक्षादि से उत्पन्न **उज्जोद**तारा, चन्द्र, मणि, माणिक्यों से उत्पन्न प्रकाश **आदव** आतप, अग्नि या सूर्य से उत्पन्न प्रकाश।

भावार्थ : शब्द, बन्ध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, आतप और उद्योत ये पुद्गल द्रव्य की दस पर्यायें हैं।। 16।।

विशेष : टीकाकार ने भेद पर्याय को स्वीकार किया है, परन्तु उस का अर्थ नहीं किया है। वस्तु को अलग-अलग करना, भेद है।। 16।।

[**सम्पादक**]

●—●—●

उत्थानिका : जीवपुद्गलयोर्धर्मगतिसहकारी भवतीत्याह –

गाथा : गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई।। 17।।

टीका : गइ सहयारी, गति सहकारी भवति। कोऽसौ? **धम्मो,** धर्मद्रव्यम्। केषाम्? पुद्गलजीवानाम्। कथंभूतानाम्? **गइपरिणयाण** गतिकर्मोदयाच्चतुर्गतिपरिणतानाम्, अत्राह – यदि तस्य गतिसहकारित्वे तादृशी शक्तिरस्ति तदा स्थिति कुर्वतस्तेषां किन्नु नानयति कुतो अथ, **अच्छंताणेव सो णेइ** धर्मस्तेषां अच्छन्तां तान् जीवपुद्गलान् स्थितिं कुर्वतां न नयति। कुतो? अधर्मद्रव्योदयात्। अस्यैवार्थस्य समर्थनमुपमानमाह, **तोयं जह मच्छाणं,** यथा तोयं पानीयं मत्स्यानां सहकारित्वे भवति स तान्मत्स्यान् स्थितिंकुर्वतो न नयति, एवं धर्मः।

उत्थानिका : जीव-पुद्गल को धर्म गति में सहकारी होता है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [जह] जैसे **[गइपरिणयाण]** गतिपरिणत **[मच्छाणं]** मछलियों को **[गमण सहयारी]** गमन में सहकारी **[तोयं]** जल होता है **[तह]** वैसे **[पुग्गलजीवाण]** पुद्गल और जीवों को **[गमणसहयारी]** गमन में सहकारी **[धम्मो]** धर्म होता है **[सो]** वह **[अच्छंता]** न चलते हुए को **[णेव]** नहीं **[णेई]** चलाता ।। 17 ।।

टीकार्थ : गइ सहयारी गति में सहकारी होता है। कौन? **धम्मो** धर्मद्रव्य। किन के? पुद्गल और जीवों के। किस प्रकार? **गइपरिणयाण** गति कर्मोदय से चतुर्गति में परिणति करने वाले।

शंका : यदि गति में सहकार्य करने की उस की ऐसी शक्ति है, तब उस के स्थिति करते समय वह क्यों नहीं गमन कराता है? ऐसा क्यों है?

समाधान : अच्छंता णेव सो णेइ धर्म उन स्थिर रहते हुए जीव पुद्गलों को चलाता नहीं है, क्यों? अधर्मद्रव्य के उदय से। इस अर्थ के समर्थन के लिए

उपमा कहते हैं। **तोयं जह मच्छाणं** जैसे पानी मछलियों को सहकारी होता है, परन्तु वह स्थिति करते हुए उन मछलियों को नहीं चलाता है। उसी प्रकार धर्म भी है।

भावार्थ : जिस प्रकार चलती हुई मछलियों के चलने में जल सहकारी होता है, उसी प्रकार धर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्गल को चलने में सहकारी होता है। जैसे जल रुकी हुई मछलियों को बलात् नहीं चलाता, उसी प्रकार धर्मद्रव्य रुके हुए जीव और पुद्गल को बलात् नहीं चलाता है।। 17।।

विशेष : **"गमण सहयारी"** की जगह टीकाकार ने **"गइ सहयारी"** यह पाठ स्वीकार किया है।। 17।। **[सम्पादक]**

●—●—●

उत्थानिका : पुद्गलजीवान्नपि स्थितिकारित्वेऽधर्मो भवतीत्याह –

गाथा : ठाणजुयाण अहम्मो पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई।। 18।।

टीका : ठाण सहयारी स्थितिः सहकारी भवति। कोऽसौ? **अहम्मो** अधर्मः, केषाम्? **पुग्गलजीवाण** पुद्गलजीवानाम्, कथंभूतानाम्? **ठाणजुयाण** स्थितिकर्मोदयात् स्थिति कुर्वतम्। अत्राह, यदि तस्य स्थितिकारित्वे तादृशी शक्तिरस्ति, तदा गच्छन्तास्तान् किन्न स्थितं कारयति? अत्रोच्यते–**गच्छंता णेव सो धरई** स अधर्मो गच्छन्तान् नैव धरति तान् जीवपुद्गलानां गच्छन्तान् नैव स्थितिं कारयति। कुतः? धर्मद्रव्योदयात्। अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थमुपमानमाह **छाया जह पहियाणं** यथा छाया पथिकान् स्थिति सहकारित्वे भवति सति तान् पथिकान् गच्छन्तोऽपि न स्थितिं कारयति एवमधर्मः पुद्गलजीवानामपि।

उत्थानिका : जीव और पुद्गल की स्थिति करने में अधर्म द्रव्य सहायक होता है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**जह**] जैसे [**छाया**] छाया [**ठाणजुयाण**] ठहरते हुए [**पहियाणं**] पथिकों को [**ठाणसहयारी**] ठहरने में सहायक है [**तह**] वैसे [**पुग्गलजीवाण**] पुद्गल जीवों को [**अहम्मो**] अधर्म है। [**सो**] वह [**गच्छंता**] चलते हुए को [**णेव**] नहीं [**धरई**] ठहराता है ।। 18 ॥

टीकार्थ : ठाण सहयारी स्थिति में सहकारी होता है। कौन? **अहम्मो** अधर्म। किन के? **पुग्गलजीवाण** पुद्गल और जीवों के। किस प्रकार? **ठाणजुयाण** स्थिति कर्म के उदय से, स्थिति करते हुए.

शंका : यदि स्थितिकार्य में अधर्मद्रव्य की ऐसी शक्ति है, तब गमन करते हुए जीव-पुद्गल को स्थिति क्यों नहीं कराता?

समाधान : गच्छंता णेव सो धरई वह अधर्म चलते हुए को नहीं रोकता। उन जीव-पुद्गल को गमन करते हुए स्थिति को प्राप्त नहीं कराता। क्यों? धर्म द्रव्य के उदय से।

इसी अर्थ का समर्थन करने के लिए उपमा कहते हैं – **छाया जह पहियाणं** जैसे छाया पथिक को स्थिति में सहकारी होते हुए भी उन चलते हुए पथिकों की स्थिति नहीं कराती, उसी प्रकार जीव-पुद्गलों को अधर्म द्रव्य भी स्थिति नहीं कराता।

भावार्थ : जिस प्रकार ठहरते हुए पथिक को ठहरने में छाया सहकारी होती है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य रुकते हुए जीव और पुद्गल के रुकने में सहयोगी होता है। जैसे छाया बलात् पथिक को नहीं रोकती, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्गल को बलात् नहीं रुकाता।। 18 ॥

पाठभेद : ठाणजुयाण = ठाणजुदाण
अहम्मो = अधम्मो। 18।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं पञ्चानामपि द्रव्याणामवकाशदाने आकाशद्रव्यं भवतीत्याह –

गाथा : अवगासदाणजोग्गं जीवाईणं वियाण आयासं।
जोण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं॥ 19॥

टीका : वियाण विशेषेण जानीहि त्वं हे भव्य! किं तत्? **आयासं** आकाशम्। कथंभूतम्? **अवगासदाणजोग्गं** अवकाशदानयोग्यं, केषाम्? **जीवाईणं** जीवादीनां पञ्चानामपि तदाकाशम्, **जोण्हं** जैनमते, **दुविहं** द्विप्रकारम्। कथम्? **लोगागासं अल्लोगागासमिदि** लोकाकाशमलोकाकाशमिति, तदेवाकाशद्रव्यम्।

उत्थानिका : इन पाँचों ही द्रव्यों को अवकाश देने के लिए आकाश द्रव्य होता है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**जीवाईणं**] जीवादिकों को [**अवगासदाणजोग्गं**] अवकाश दान के योग्य [**जोण्हं**] जिनेन्द्र कथित [**आयासं**] आकाश [**वियाण**] जानो [**लोगागासं**] लोकाकाश [**अल्लोगागासं**] अलोकाकाश [**इदि**] इस प्रकार [**दुविहं**] दो प्रकार का है।। 19॥

टीकार्थ : वियाण हे भव्य! तुम विशेष रूप से जानो। किस को जानो? **आयासं** आकाश को, वह आकाश कैसा है? **अवगासदाणजोग्गं** अवकाश दान के योग्य, किन को? **जीवाईणं** जीवादि पाँचों ही द्रव्यों को, वह आकाश है। **जोण्हं** जैनमत में **दुविहं** दो प्रकार का, कैसे? **लोगागासं अल्लोगागासमिदि** लोकाकाश और अलोकाकाश, वही आकाश द्रव्य है।

भावार्थ : जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्य को अवकाश [ठहरने के लिए स्थान] प्रदान करता है, वह आकाश द्रव्य है। उस के लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद हैं।। 19।।

पाठभेद : जीवाईणं = जीवादीणं।
जोण्हं = जेण्हं।। 19।।

●—●—●

उत्थानिका : लोकालोकप्रकारेण द्विप्रकारं भवतीत्याह –

गाथा : **धम्माधम्माकालो पुग्गलजीवा य संति जावदिए।**
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो।। 20।।

टीका : सो लोगो सः लोको भवति। सः कः? **जावदिए आयासे संति** यावत्परिमाणे आकाशे सन्ति विद्यन्ते। के ते? **धम्माधम्माकालो** धर्माधर्मकालाः। न केवलमेते **पुग्गलजीवा य** पुद्गलजीवाश्च, **तत्तो परदो अलोगुत्तो** तस्मात् परो अलोक उक्तः।

उत्थानिका : लोक और अलोक के भेद से आकाश दो प्रकार का है, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**जावदिये**] जितने [**आयासे**] आकाश में [**धम्माधम्मा**] धर्म, अधर्म [**कालो**] काल [**य**] और [**पुग्गलजीवा**] पुद्गल, जीव [**संति**] हैं [**सो**] वह [**लोगो**] लोक है। [**तत्तो**] उस से [**परदो**] परे [**अलोग**] अलोक [**उत्तो**] कहा गया है।। 20।।

टीकार्थ : सो लोगो वह लोक है, वह कौन? **जावदिए आयासे संति** जितने आकाश में हैं, कौन विद्यमान हैं? **धम्माधम्माकालो** धर्म, अधर्म और काल। केवल ये ही नहीं है, **पुग्गलजीवा य** पुद्गल और जीव। **तत्तो परदो अलोगुत्तो** उस के पश्चात् अलोक कहा गया है।

भावार्थ : आकाश के जितने हिस्से में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँच द्रव्य रहते हैं, उतने आकाश को लोकाकाश कहते हैं। लोकाकाश से बाहर का आकाश अलोकाकाश कहलाता है।। 20॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं कालस्वरूपमाह –

गाथा : **दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो।**
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो हु परमट्ठो॥ 21॥

टीका : पुद्गलकर्माणुद्रव्यप्रच्यवनात् उत्पन्नः समयरूपः, मुख्यकालस्य पर्यायाख्यः क्षणध्वंसीव्यवहारकालः, **परिणामादीलक्खो** स च व्यवहारकालः परिणामैर्लक्ष्यते नवजीर्णरूपैः। **वट्टणलक्खो हु परमट्ठो** द्रव्याणि वर्त्तनां याति स्वपरिणतिं नयति, तदेव लक्षणस्य स वर्त्तनालक्षणः हु पुनः परमट्ठो परमार्थकालः, अयं उक्तो ज्ञायते, कालः, इति लोकवचनात्। स च नित्योऽन्यथा कथं द्रव्यवत्ता?

उत्थानिका : अब काल का स्वरूप कहते हैं –

गाथार्थ : [**जो**] जो [**दव्वपरिवट्टरूवो**] द्रव्यों के परिवर्तन स्वरूप है [**सो**] वह [**कालो**] काल [**हवेइ**] है। [**परिणामादीलक्खो**] परिणामादि लक्षण वाला [**ववहारो**] व्यवहार काल है। [**हु**] और [**वट्टणलक्खो**] वर्तना लक्षण वाला [**परमट्ठो**] परमार्थ काल है। 21।

टीकार्थ : पुद्गल कर्माणु द्रव्य के प्रच्यवन से उत्पन्न समयरूप मुख्य काल की पर्याय क्षणध्वंसी व्यवहार काल है। **परिणामादीलक्खो** वह व्यवहार काल परिणाम के द्वारा नवीनता और जीर्णता रूप से देखा जाता है। **वट्टणलक्खो हु परमट्ठो** द्रव्यों की वर्तना कराता है, स्व–परिणति को प्राप्त कराता है, उसी लक्षण वाला वह वर्तना हु पुनः **परमट्ठो** परमार्थ काल है, ऐसा

कहा जाता है, ऐसा जाना जाता है। ''काल'' इस शब्द को लोकवचन से ग्रहण करना चाहिये। वह नित्य है, अन्यथा उस की द्रव्यता कैसे होगी?

भावार्थ : एक पुद्गल परमाणु मन्दगति से गमन करते हुए एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर्यन्त जितने काल में गमन करता है, उतने काल को समय कहते हैं। समय-घंटा-घड़ी आदि सब व्यवहार काल है। प्रत्येक द्रव्य के परिणमन में मदत करने वाला वर्तना लक्षण रूप काल निश्चय काल है॥ 21॥

पाठभेद : हु = य ॥ 21॥

●—●—●

उत्थानिका : तस्य निश्चयकालस्य किं स्वरूपमित्याह –

गाथा : **लोयायासपएसे एक्केक्के जे ठिया हु एक्केक्को।**
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि॥ 22॥

टीका : ते कालाणू असंखदव्वाणि, ते कालाणवोऽसंख्यातद्रव्याणि ज्ञातव्या:। ते के? **जे ठिया** ये स्थिता: हु स्फुटम्, क्व? **लोयायासपएसे** लोकाकाशप्रदेशे। कथं स्थिता:? **एक्केक्के** एकैके एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैकपरिपाट्या। अयमर्थ: लोकाकाश य यावन्त: प्रदेशास्तावन्त: कालाणवो, निष्क्रिया, एकैकाकाशप्रदेशेन एकैकावृत्यालोकं व्याप्य स्थिता: रूपादिगुणविरहिता अमूर्त्ता:। कथं लोकव्याप्यस्थिता:? **रयणाणं रासीमिव** यथा रत्नानां राशय: संघाततारारामेकम् (?) व्याप्य तिष्ठति तथा ते तिष्ठन्ति।

उत्थानिका : उस निश्चयकाल का क्या स्वरूप है? सो कहते हैं –

गाथार्थ : [**एक्केक्के**] एक-एक [**लोयायास**] लोकाकाश के [**पएसे**] प्रदेश पर [**जे**] जो [**रयणाणं**] रत्नों की [**रासीमिव**] राशि के समान [**एक्केक्का**] एक-एक [**कालाणू**] कालाणु [**ठिया**] स्थित हैं। [**ते**] वे

[हु] निश्चय से [**असंखदव्वाणि**] असंख्यात द्रव्य हैं ।। 22 ।।

टीकार्थ : ते कालाणु असंखदव्वाणि वे कालाणु असंख्यात द्रव्य हैं, ऐसा जानना चाहिये। वे कौन? **जे ठिया** जो स्थित हैं, **हु** निश्चयतः, कहाँ? **लोयायासपएसे** लोकाकाश के प्रदेश में। कैसे स्थित हैं? **एक्केक्के** एक-एक आकाश के प्रदेश पर एक-एक, इस तरह। इस का यह अर्थ है कि लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने कालाणु हैं, वे निष्क्रिय हैं, एक-एक आकाशप्रदेश पर एक-एक रूप से लोक को व्याप कर स्थित हैं, वे रूपादि गुणों से रहित अमूर्त हैं। वे लोक में व्याप्त हो कर किस प्रकार स्थित हैं? **रयणाणं रासीमिव** जैसे रत्नों की राशि व्याप कर स्थित रहती है, उसी प्रकार वे रहते हैं।

भावार्थ : लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है। उस के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान एक-एक कालाणु स्थित है। उन कालाणुओं को निश्चयकाल कहते हैं। काल द्रव्य अमूर्तिक है।। 22 ।।

पाठभेद :	लोयायासपएसे	=	लोयायासपदेसे
	एक्केक्के	=	इक्केक्के
	एक्केको	=	इक्केक्का ।। 22 ।।

●—●—●

उत्थानिका : एतानि षड् द्रव्याणि कालरहितानि पञ्चास्तिकायाः भवन्तीत्याह –

गाथा : एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ।। 23 ।।

टीका : एवं पूर्वोक्तप्रकारेण **उत्तं** प्रदिपादितम्। किं तत्? **दव्वं** द्रव्यम्। **इदं** प्रत्यक्षीभूतम्, कतिभेदम्? **छब्भेयं** षड्भेदम्। कस्मात्?

जीवाजीवप्पभेददो जीवाजीवप्रभेदतः। **काल विजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु** एतानि षड्द्रव्याणि कालरहितानि पञ्चास्तिकायाः ज्ञातव्याः दु पुनः।

उत्थानिका : इन छह द्रव्यों में काल द्रव्य को छोड़ कर पाँच द्रव्य अस्तिकाय होते हैं, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**एवं**] इस प्रकार [**जीवाजीवप्पभेददो**] जीव-अजीव के भेद से [**इदं**] यह [**दव्वं**] द्रव्य [**छब्भेयं**] छह प्रकार का [**उत्तं**] कहा गया है। [**दु**] और [**कालविजुत्तं**] काल को छोड़ कर [**पंच**] पाँच [**अत्थिकाया**] अस्तिकाय [**णादव्वा**] जानने चाहिये।। 23।।

टीकार्थ : एवं पूर्व कथित प्रकार से **उत्तं** प्रतिपादित, वह क्या? **दव्वं** द्रव्य **इदं** प्रत्यक्षभूत, कितने भेद हैं? **छब्भेयं** छह भेद, किस प्रकार? **जीवाजीवप्पभेददो** जीव और अजीव के प्रभेद के कारण। **कालविजुत्तं णादव्वा पञ्च अत्थिकाया दु** इन छह द्रव्यों में से कालरहित पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं, ऐसा जानना चाहिये। **दु** पुनः।

भावार्थ : जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों में से काल रहित पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं।। 23।।

विशेष : प्राप्त प्रति में एवं प्राप्त टीका में पञ्च शब्द का प्रयोग नहीं था। परन्तु गाथा छन्द के नियम को व अन्य पाठों को देख कर पञ्च शब्द दोनों में ही हम ने स्वीकार किया है। [**सम्पादक**] ।। 23।।

●–●–●

उत्थानिका : एतेषां पञ्चास्तिकायानामस्तिकायत्वं कथं सिद्धमित्याह–

गाथा : संति जदो ते णिच्चं अत्थि त्ति भणंति जिणवरा जम्हा।
काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाया य॥ 24॥

टीका : संति जदो ते णिच्चं ते पञ्चापि यतः यस्मात् कारणात् नित्यं सन्ति विद्यन्ते, स्वरूपेण। **अत्थि त्ति भणंति जिणवरा** तस्मात् कारणात् विद्यन्ते इति जिनवराः वदन्ति। अत्रास्तित्वं साधितम्। **जम्हा बहुदेसा** यस्माद्बहुप्रदेशास्ते **काया इव** शरीराणीव, अत्र कायित्वं साधितम्। **तम्हा काया य** तस्मात् कायाश्चेति। एवं मिलित्वा **अत्थिकाया य** अस्तिकायाश्च भण्यन्ते।

अत्रपूर्वपक्षः – ननु कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः, जीवादीनां कथमत्रोच्यते? तेषामुपचारात् अध्यारोप्यते। कुतः उपचारः? यथा शरीरं पुद्गलद्रव्यं प्रचयात्मकं तथा जीवादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया इव काया इति।

उत्थानिका : इन पंचास्तिकायों का अस्तिकायत्व कैसे सिद्ध हैं? कहते हैं –

गाथार्थ : [**जदो**] क्योंकि [**ते**] वे [**णिच्चं**] नित्य [**संति**] विद्यमान हैं [**तेण**] इसलिए [**जिणवरा**] जिनेन्द्र [**अत्थि त्ति**] अस्ति ऐसा [**भणंति**] कहते हैं। [**य**] और [**जम्हा**] क्योंकि [**काया**] काया के [**इव**] समान [**बहुदेसा**] बहुप्रदेशी हैं [**तम्हा**] इसलिए [**काया**] काय है [**य**] और [**अत्थिकाया**] अस्तिकाय है॥ 24॥

टीकार्थ : संति जदो ते णिच्चं वे पाँचों भी चुंकि जिस कारण से नित्य, स्वरूप की अपेक्षा से विद्यमान रहते हैं। **अत्थि त्ति भणंति जिणवरा** उस कारण से वे "अस्ति" हैं, ऐसा जिनवर कहते हैं। यहाँ अस्तित्व सिद्ध किया गया। **जम्हा बहुदेसा** क्योंकि वे बहुप्रदेशी हैं। **काया इव** शरीरों के समान।

यहाँ कायित्व सिद्ध किया गया है। **तम्हा काया य** उस कारण वे काय हैं। ऐसे मिल कर **अत्थिकाया य** अस्तिकाय कहलाते हैं।

यहाँ पूर्व पक्ष वाला [प्रश्नकर्ता] कहता है कि काय शब्द शरीर के लिए प्रयोग में आता है, यहाँ जीवादि के लिए काय शब्द का प्रयोग कैसे किया गया? उस का उपचार से अध्यारोप किया जाता है। उपचार क्यों किया गया है? जैसे शरीर पुद्गल द्रव्य प्रचयात्मक है, उसी प्रकार जीवादि द्रव्य भी प्रदेश प्रचय की अपेक्षा से काया के समान है।

भावार्थ : अस्ति और काय इन दो शब्दों से अस्तिकाय शब्द बना है। द्रव्य स्वभाव से विद्यमान है - अतः वे अस्ति हैं। पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं - अतः वे काय हैं। वे अस्ति भी हैं एवं काय भी, अतः वे अस्तिकाय हैं ॥ 24 ॥

पाठभेद : संति जदो ते णिच्चं = संति जदो तेणेदे ॥ 24 ॥

●—●—●

उत्थानिका : कालस्याकायत्वं कथमित्याह -

गाथा : **होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।**
मुत्ते तिविह पएसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥ 25 ॥

टीका : होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे पएसा भवन्ति असंख्याताः प्रदेशाः जीवधर्माधर्माणाम्। **अणंत आयासे** अनन्तप्रदेशा आकाशस्य। **मुत्ते तिविह पएसा** मूर्ते पुद्गले त्रिविधाः प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च, **कालस्सेगो** कालस्यैकः प्रदेशः, कालाणूनां रत्नराशिवदवस्थितत्वात्, **ण तेण सो काओ** तेन कारणेन सः कालः काय संज्ञा न लभते।

उत्थानिका : काल का अकायत्व किस प्रकार है? उसे कहते हैं –

गाथार्थ : [**जीवे**] जीव में [**धम्माधम्मे**] धर्म-अधर्म में [**असंखा**] असंख्यात [**आयासे**] आकाश में [**अणंत**] अनन्त [**मुत्ते**] पुद्गल में [**तिविह**] तीनों ही प्रकार के [**पएसा**] प्रदेश [**होंति**] होते हैं। [**कालस्य**] काल का [**एगो**] एक प्रदेश है [**तेण**] इसलिए [**सो**] वह [**काओ**] अस्तिकाय [**ण**] नहीं है ।। 25 ॥

टीकार्थ : होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे पएसा जीव, धर्म और अधर्म के असंख्यात प्रदेश होते हैं। **अणंत आयासे** आकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं। **मुत्ते तिविह पएसा** मूर्तिक पुद्गल के संख्यात, असंख्यात, अनन्त तीनों ही प्रदेश होते हैं। **कालस्सेगो** काल का एक प्रदेश होता है, क्योंकि कालाणु रत्नराशि के समान स्थित होते हैं। **ण तेण सो काओ** उस कारण से काल को काय संज्ञा प्राप्त नहीं होती है।

भावार्थ : एक जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेशी होते हैं। आकाश अनन्त प्रदेशी है, परन्तु लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है। पुद्गल संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेशी होता है। ये सब बहुप्रदेशी हैं, अत: अस्तिकाय हैं। काल एक प्रदेशी होता है, अत: वह अस्तिकाय नहीं है ।। 25 ॥

पाठभेद : पएसा = पदेसा ।। 25 ॥

विशेष : टीका में "परमाणूणां रत्नराशिवदवस्थितत्वात्" पाठ पाया गया है। परन्तु वस्तुत: परमाणूणां की जगह कालाणूणां पाठ चाहिये। [**सम्पादक**]

●—●—●

उत्थानिका : अत्रपूर्वपक्ष:। ननु पुद्गलपरमाणुरप्येकप्रदेशी, तस्यापि कायत्वानुपपत्ते:। अस्य निराकरणार्थमिदमाह –

गाथा : एयपदेसो वि अणु णाणाखंधप्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हू॥ 26॥

टीका : णाणाखंधप्पदेसदो वि अणु होदि बहुदेसो उवयारा नानापुद्गलस्कन्धरूपस्यैकप्रदेशोऽपि अणु बहुप्रदेशोऽपि भवति। कुतः? उपचारात्, यतस्तस्य पुद्गलस्य परमाणोः पुनरपि स्कन्धरूपत्वे परिणतिरस्ति, कालाणोः पुनः परिणतिर्नास्ति स्कन्धरूपत्वेन, यतो रत्नानां राशय इव ते स्थितास्तस्मात्, **तेण य काओ भणंति सव्वण्हू** तेन कारणेन च कायत्वं वदन्ति पुद्गलपरमाणोस्तत्त्वज्ञाः।

उत्थानिका : यहाँ पूर्वपक्षकार [प्रश्नकर्त्ता] का कथन है कि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है, उस का भी कायत्व सिद्ध नहीं होता। उस का निराकरण करते हुए यहाँ कहते हैं कि –

गाथार्थ : [**एयपदेसो**] एक प्रदेशी [**वि**] भी [**अणु**] अणु [**णाणाखंधप्पदेसदो**] नाना स्कन्धों का कारण होने से [**बहुदेसो**] बहुप्रदेशी [**होदि**] होता है। [**य**] और [**तेण**] इसलिए [**सव्वण्हू**] सर्वज्ञ [**उवयारा**] उपचार से [**काओ**] काय [**भणंति**] कहते हैं।। 26॥

टीकार्थ : णाणाखंधप्पदेसदो वि अणु होदि बहुदेसो उवयारा अनेक पुद्गल स्कंध रूप बनने की शक्ति वाला एक प्रदेशी अणु बहुप्रदेशी भी होता है। कैसे? उपचार से। चुंकि उस पुद्गल के परमाणु की पुनः स्कन्धरूप में परिणति होती है, कालाणु की पुनः परिणति स्कन्ध रूप से नहीं होती, क्योंकि रत्नों की राशि के समान वे स्थित रहते हैं। **तेण य काओ भणंति सव्वण्हू** इस कारण से तत्त्वज्ञ पुद्गल परमाणु को काय कहते हैं।

भावार्थ : अणु एकप्रदेशी है, परन्तु उस में स्कन्ध रूप से बनने की शक्ति

है, अतः उसे उपचार से बहुप्रदेशी कहा जाता है। कालाणु में स्कन्ध रूप परिणमन करने की शक्ति नहीं होती, अतः उसे उपचार से भी अस्तिकाय नहीं कहा जाता।। 26 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं प्रदेशलक्षणमाह –

गाथा : जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं॥ 27॥

टीका : तं खु पदेसं जाणे तं खु स्फुटं प्रदेशं जानाम्यहम्। तं कम्? **जावदियं आयासं** यावत्प्रमाणमाकाशम्। किं विशिष्टम्? **अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं** – अविभागीकृत पुद्गलद्रव्यस्थानदानयोग्यम्। अत्र पूर्वपक्षः – ननु अविभागीकृतपुद्गलद्रव्येण यावदवष्टब्धं रुद्धमाकाशं तत्प्रदेशमुक्तम्। कथं तावत्प्रदेशे सर्वपदार्थानामवगाहना। अत्रोच्यते, आकाशस्यार्थेऽवगाहनालक्षणत्वात्तादृशी शक्तिरस्ति, एकस्मिन् प्रदेशे जीवादीनां पञ्चानामपि समवायः समाहितं तथापि तस्य तत्परिणामित्वम्। अयमत्र दृष्टान्तः यथा गुह्यनागनिष्क्रमध्ये सुवर्णलक्षेऽपि प्रविष्टे नागस्य तन्मात्रता, तथाकाशप्रदेशस्याप्यवगाहने तादृशी शक्तिरस्ति।

उत्थानिका : अब प्रदेश का लक्षण कहते हैं –

गाथार्थ : [**जावदियं**] जितना [**आयासं**] आकाश [**अविभागीपुग्गलाणुवट्टद्धं**] अविभागी पुद्गल के द्वारा व्याप्त हो [**तं**] उसे [**खु**] निश्चय से [**सव्वाणु ट्ठाणदाणरिहं**] सम्पूर्ण अणुओं को स्थान देने में समर्थ [**पदेसं**] प्रदेश [**जाणे**] जानो।। 27 ॥

टीकार्थ : **तं खु पदेसं जाणे** उसे मैं निश्चय से प्रदेश जानता हूँ। उसे

किसे? **जावदियं आयासं** जितने प्रमाण आकाश को, किस विशेषता से युक्त? **अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं** अविभागी पुद्गल द्रव्य को स्थान देने योग्य। यहाँ पूर्व पक्षकार प्रश्न करता है कि अविभागी पुद्गल द्रव्य के द्वारा जितना आकाश रोका गया है, उसे प्रदेश कहते हैं। उतने प्रदेश में सम्पूर्ण पदार्थों की अवगाहना कैसे होती है? यहाँ कहते हैं – द्रव्यों को अवगाहन देना, आकाश का लक्षण होने से उस में वैसी शक्ति होती है। एक प्रदेश में जीवादि पाँचों का ही समवाय समाहित है, तथापि वह परिणामी है। यहाँ यह दृष्टान्त है – जैसे – गूढ़ नागरस के गुटके में बहुत से सुवर्ण के प्रवेश करने पर भी उस गूढ़ नागरस की वही मात्रा रहती है, उसी प्रकार आकाश प्रदेश की भी अवगाहना में वैसी ही शक्ति होती है।

भावार्थ : जितने आकाश को एक पुद्गल परमाणु रोक लेता है, उतने आकाश को प्रदेश कहते हैं। वह प्रदेश सभी द्रव्यों को स्थान देने में समर्थ है ॥ 27 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं जीवानां पुद्गलसम्बन्धे सति परिणामविशेषसंभवात् पदार्थानाह –

गाथा : आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसा ते वि समासेण पभणामि॥ 28॥

टीका : ते वि समासेण पभणामि – तेऽपि संक्षेपेण प्रभणामि। ते के? जे ये **आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे** – आस्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः सपुण्यपापाः, कथंभूताः? एते **जीवाजीवविसेसा** अत्र जीवपुद्गलयोर्विशेषाः। यतो जीवस्य

पुद्गलसम्बन्धादशुभपरिणामा: तस्मात् पापम्, पापादास्रवस्तस्मात्कर्मबन्ध:। कर्मबन्धनिराकरणाय संवर-निर्जरा, संवरनिर्जराभ्यां पुण्यम्, पुण्यात् शुभपरिणति:, शुभपरिणते: कर्मक्षय:, कर्मक्षयान्मोक्ष: इति। तत्र शुभाशुभकर्मागमद्वाररूप आस्रव:। आत्मकर्मणोरन्योन्यप्रवेशात् प्रदेशात्मको बन्ध:। आस्रवनिरोधो संवर:, एकदेशकर्मक्षयलक्षणा निर्जरा, सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्ष:। अव्रतपरित्यागलक्षणं पुण्यम्। मिथ्यात्वप्रवर्त्तनलक्षणं पापम्।

उत्थानिका : अब जीवों के और पुद्गल के सम्बन्ध से जो परिणाम विशेष उत्पन्न होते हैं, उन पदार्थों को कहते हैं -

गाथार्थ : [**जे**] जो [**आसव**] आस्रव [**बंधण**] बंध [**संवर**] संवर [**णिज्जर**] निर्जरा [**मोक्खो**] मोक्ष [**सपुण्णपावा**] पुण्य और पाप सहित [**जीवाजीवविसेसा**] जीव और अजीव के भेद हैं [**ते**] उन्हें [**वि**] भी [**समासेण**] संक्षेप से [**पभणामि**] मैं कहता हूँ।। 28 ।।

टीकार्थ : ते वि समासेण पभणामि उन को भी मैं संक्षेप से कहता हूँ। वे कौन हैं? **जे** जो **आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे** आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप। ये कैसे हैं? ये **जीवाजीवविसेसा** जीव और पुद्गल की पर्यायें हैं। चुंकि जीव के पुद्गल सम्बन्ध से अशुभ परिणाम होते हैं, उस से पाप होता है, पाप से आस्रव और आस्रव से कर्म बन्ध होता है। कर्मबन्ध के निराकरण के लिए संवर-निर्जरा होती है, संवर-निर्जरा से पुण्य, पुण्य से शुभ परिणति, शुभपरिणति से कर्मक्षय और कर्मों के क्षय से मोक्ष होता है।

उस में शुभ और अशुभ कर्म के आगमन का जो द्वार है, वह आस्रव है। आत्मा व कर्मों का अन्योन्य प्रवेश हो कर एक प्रदेशावगाही हो जाना, बन्ध है।

आस्रव का निरोध संवर है।

कर्म का एकदेश क्षय होना, निर्जरा है।

सम्पूर्ण कर्म का क्षय होना, मोक्ष है।

व्रत का परित्याग नहीं करना, पुण्य है।

मिथ्यात्व में प्रवर्त्तन करना, पाप है।

भावार्थ : पदार्थ नौ होते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप। जीव और अजीव की ये सब पर्यायें हैं।। 28 ॥

पाठभेद : पभणामि - पभणामो। ।। 28 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं आस्रवस्वरूपमाह –

गाथा : **आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।**
भावासओ जिणुत्तो दव्वासवणं परो होदि॥ 29॥

टीका : स विण्णेओ भावासओ जिणुत्तो – स विज्ञेयो भावास्रवो जिनोक्तः, कः सम्बन्धी? **अप्पणो** आत्मनः। स कः? **आसवदि जेण कम्मं परिणामेण** – आस्रवति कर्म येन परिणामेण। **दव्वासवणं परो होदि** सः भावास्रवो द्रव्यास्रवणे हेतुर्भवति, परिणामेण शुभाशुभरूपेण यदुपार्जितशुभाशुभरूपास्रवः, स एव ज्ञानावरणादिस्वरूपेण परिणत एव द्रव्यास्रवो भवतीत्यर्थः।

उत्थानिका : अब आस्रव के स्वरूप को कहते हैं –

गाथार्थ : [**अप्पणो**] आत्मा के [**जेण**] जिस [**परिणामेन**] परिणाम से [**कम्मं**] कर्म [**आसवदि**] आता है [**स**] वह [**जिणुत्तो**] जिनेन्द्र कथित [**भावासओ**] भावास्रव [**विण्णेओ**] जानना चाहिये [**दव्वासवणं**] द्रव्यास्रव [**परो**] अन्य [**होदि**] होता है।। 29 ॥

टीकार्थ : स विण्णेओ भावासओ जिणुत्तो वह जिनेन्द्र कथित भावास्रव जानना चाहिये। किस के सम्बन्ध से? **अप्पणो** आत्मा के। वह कौन? **आसवदि जेण कम्मं परिणामेण** जिस परिणाम से कर्म आता है। **दव्वासवणं परो होदि** वह भावास्रव द्रव्यास्रव का हेतु होता है। शुभाशुभ रूप परिणाम से उपार्जित जो शुभाशुभ रूप आस्रव हैं, वही ज्ञानावरणादि रूप से परिणत द्रव्यास्रव होता है, यह अर्थ है।

भावार्थ : जिन परिणामों से पुद्गलकर्मों का आगमन होता है, वह परिणाम भावास्रव कहलाता है। ज्ञानावरणादि कर्मों का आना द्रव्यास्रव है। भावास्रव द्रव्यास्रव का तथा द्रव्यास्रव भावास्रव का निमित्त कारण होता है।। 29।।

पाठभेद : दव्वासवणं = कम्मासवणं। ।। 29 ।।

●—●—●

उत्थानिका : एतद्द्वयोर्मध्ये भावास्रवस्वरूपमाह –

गाथा : मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो स विण्णेया।

पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स।। 30 ।।

टीका : स विण्णेया सम्यक्प्रकारेण विज्ञेया:, के ते? भेदा:। कस्य? **पुव्वस्स** पूर्वस्य, भावास्रवस्य इत्यर्थ:। किं नामानो भेदा:? **मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयो**–मिथ्यात्वाविरतिप्रमादयोग-क्रोधादय:। कुत:? **पण पण पणदस तिय चदु भेदा दु**–पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रय चत्वारो भेदात्। तत्र मिथ्यात्वं पञ्चप्रकारम्, **'सर्वं क्षणिकम्'** इत्येकान्तदर्शी **बौद्धा:**। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इत्येकान्तदर्शी **ब्रह्माद्वैतवादी। विनयादेव मोक्ष** इत्येकान्तदर्शी **शैवा:**। **'जिनस्य भोजनं कुर्वत:, साभरणे मोक्ष:, स्त्रीनिर्वाणं च'** इत्येकान्तदर्शी

श्वेतपट:। विकल्पसंकल्पकारकात् यथा ज्ञानात्मको मोक्षस्तथाज्ञानादेव इति मस्करपूर्ण:, श्रीपार्श्वनाथशिष्योऽप्येकान्तदर्शी। अविरति पञ्चप्रकारी हिंसा, असत्यम्, चौर्यम्, मैथुनसेवा, परिग्रहस्वीकाररूपा:। प्रमादा: पञ्चदशप्रकारा:, स्त्रीभक्तराजचौरकथा-श्चत्वार:। क्रोधमानमायालोभा-श्चत्वार:। इन्द्रियप्रवृत्तय: पञ्च। निद्रा स्नेहश्च। योगास्त्रिप्रकारा: अशुभमनोवाक्कायरूपा:। क्रोधश्चतु: प्रकार: स च प्रमादमध्ये पतितो दृष्टव्या:।

उत्थानिका : इन दोनों में से भावास्रव का स्वरूप कहते हैं –

गाथार्थ : [**पुव्वस्स**] भावास्रव के [**मिच्छत्त**] मिथ्यात्व [**अविरदि**] अविरति [**पमाद**] प्रमाद [**जोग**] योग [**कोहादयो**] क्रोधादि [**दु**] और (वे) [**कमसो**] क्रम से [**पण**] पाँच [**पण**] पाँच [**पणदस**] पन्द्रह [**तिय**] तीन [**चदु**] चार [**भेदा**] भेद [**विण्णेया**] जानने चाहिये।।30।।

टीकार्थ : स विण्णेया सम्यक् प्रकार से जानना चाहिये। उस के कितने भेद हैं? किस के? **पुव्वस्स** पूर्व के, भावास्रव के। किस नाम वाले भेद हैं? **मिच्छत्ताविरदि पमादजोगकोहादयो** मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोधादि। किस प्रकार? **पण पण पणदस तिय चदु भेदा दु** पाँच, पाँच, पन्द्रह, तीन और चार भेद से।

उस में मिथ्यात्व पाँच प्रकार का है। **सभी वस्तुएं क्षणिक हैं** ऐसे एकान्तदर्शी बौद्ध हैं। **निश्चय से ये सब ब्रह्म हैं** ऐसे एकान्तदर्शी ब्रह्माद्वैतवादी हैं। **विनय से ही मोक्ष होता है** ऐसे एकान्तदर्शी शैव हैं। **जिनेन्द्र को भोजन करते हुए, आभरण सहित मोक्ष होता है, स्त्री का निर्वाण होता है** ऐसे एकान्तदर्शी श्वेताम्बर हैं। **विकल्प और संकल्प का कारक होने से जैसे ज्ञानात्मक मोक्ष होता है, वैसे अज्ञान से ही मोक्ष होता है** ऐसा मानने वाला

श्री पार्श्वनाथ का शिष्य मस्करीपूरण भी एकान्तवादी है।

अविरति - हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन सेवा और परिग्रह स्वीकार रूप पाँच प्रकार की है।

प्रमाद के पन्द्रह प्रकार हैं, स्त्रीकथा - भक्तकथा - राजकथा और चोरकथा ये चार विकथाएं, क्रोध-मान-माया और लोभ ये चार कषायें, पाँच इन्द्रिय प्रवृत्तियाँ, निद्रा और स्नेह।

अशुभ मन-वचन-काय रूप तीन योग है।

क्रोधादि चार प्रकार के हैं, उसे प्रमाद में ही गर्भित जानना चाहिये।

भावार्थ : पाँच मिथ्यात्व, पाँच अविरति, पन्द्रह प्रमाद, तीन योग और चार कषाय इस प्रकार भावास्रव के 32 भेद हैं।

बौद्ध एकान्तमिथ्यादृष्टि, ब्रह्माद्वैतवादी विपरीत मिथ्यादृष्टि, श्वेताम्बर संशय मिथ्यादृष्टि, शैव विनयमिथ्यादृष्टि तथा मस्करीपूरण अज्ञानमिथ्यादृष्टि हैं।। 30।।

पाठभेद : कोहादयो स = कोहादओथ। ।। 30।।

विशेष : टीका में "क्रोधश्चतु:प्रकार:" यह पाठ है। मेरे विचारानुसार "क्रोधादयश्चतु:प्रकार:" ऐसा पाठ होना चाहिये। अथवा "क्रोधश्चतु: प्रकार:, एवं मानादिकमपि", ऐसा पाठ होना चाहिये। [सम्पादक]

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं द्रव्यास्रवस्य द्वितीयस्वरूपमाह -

गाथा : **णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।**
दव्वासओ स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो।। 31।।

टीका : दव्वासओ स णेओ द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः। कतिभेदाः? **अणेयभेओ** - अनेकभेदाः। केन कथितः? **जिणक्खादो** जिनेन प्रतिपादितः। **स** कः? **जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि**-योग्यं यत्पुद्गलं समास्रवति, केषां योग्यम्? **णाणावरणादीणं**-ज्ञानावरणादीनां, कर्मणामष्टानां, अष्टभावास्रवो हि द्रव्यास्रवस्य हेतुः।

उत्थानिका : अब दूसरे आस्रव के स्वरूप को कहते हैं –

गाथार्थ : [**णाणावरणादीणं**] ज्ञानावरणादि के [**जोग्गं**] योग्य [**जं**] जो [**पुग्गलं**] पुद्गल [**समासवदि**] आता है [**स**] वह [**जिणक्खादो**] जिनेन्द्र कथित [**अणेयभेओ**] अनेक भेदों वाला [**दव्वासओ**] द्रव्यास्रव [**णेओ**] जानना चाहिये ।। 31 ।।

टीकार्थ : दव्वासओ स णेओ उसे द्रव्यास्रव जानो। उस के कितने भेद हैं? **अणेयभेओ** अनेक भेद हैं। किस ने कहा है? **जिणक्खादो** जिनेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित है। वह कौन? **जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि** जो योग्य पुद्गल आस्रव को प्राप्त होता है। किन के योग्य? **णाणावरणादीणं** ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के, अष्टभावास्रव निश्चय से द्रव्यास्रव के हेतु हैं।

भावार्थ : भावास्रव का निमित्त पा कर ज्ञानावरणादि कर्मों के योग्य पुद्गल द्रव्य का जो आस्रव होता है, वह द्रव्यास्रव है। द्रव्यास्रव के अनेक भेद हैं ।। 31 ।।

पाठभेद : दव्वासओ = दव्वासवो ।। 31 ।।

विशेष : उत्थानिका में "द्रव्यास्रवस्य द्वितीयस्वरूपमाह" ऐसा लिखा है। उस स्थान पर "द्वितीय आस्रवस्य स्वरूपमाह" ऐसा होना चाहिये।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं भावबन्धद्रव्यबन्धयोः स्वरूपमाह –

गाथा : बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो॥ 32॥

टीका : भावबंधो सो स भावबन्धो भवति। स कः? **जेण दु चेदणभावेण** येन पुनश्चैतन्यभावेन, **बज्झदि कम्मं** बध्यते कर्म, **इदरो** इतरः द्रव्यबन्धः। स कथंभूतः? **कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं** कर्मात्मप्रदेशानां परस्पर प्रवेशनम्।

उत्थानिका : अब भावबन्ध और द्रव्यबन्ध का स्वरूप कहते हैं –

गाथार्थ : [**जेण**] जिस [**चेदणभावेण**] चैतन्य भावों से [**कम्मं**] कर्म [**बज्झदि**] बन्धता है, [**सो**] वह [**भावबंधो**] भावबन्ध है [**दु**] और [**कम्मादपदेसाणं**] कर्म और आत्म प्रदेशों का [**अण्णोण्णपवेसणं**] अन्योन्य प्रवेश होना [**इदरो**] द्रव्यबन्ध है।। 32॥

टीकार्थ : भावबंधो सो वह भावबन्ध होता है, वह कौन? **जेण दु चेदणभावेण** पुनः जिस चैतन्य भाव से **बज्झदि कम्मं** कर्म बंधता है, **इदरो** इतर, द्रव्यबन्ध, वह कैसा है? **कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं** कर्म और आत्मप्रदेशों का परस्पर प्रवेश।

भावार्थ : जिन चैतन्यमयी परिणामों से कर्मबन्ध होता है, वह भावबन्ध है। आत्मप्रदेश एवं कर्मों का परस्पर एक दूसरे में प्रवेश होना द्रव्यबन्ध है।। 32॥

●—●—●

उत्थानिका : स च बन्धश्चतुर्विधो भवति।

गाथा : पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगापयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति॥ 33॥

टीका : चदुविधो बंधो चतुर्विधो बन्धो भवति। कस्मात्? स **पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु** प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदात्। स कस्य, कस्मात् बन्ध इति? **जोगा पयडिपदेसा** अत्राशुभमनोवचन-कायेभ्यः, प्रकृतिप्रदेशबन्धौ भवतः। **ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति** स्थिति-अनुभागबन्धौ कषायतो भवतः। तत्र ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां बन्धः। मिथ्यात्वासंयमकषाययोगवशात् कर्मत्वमुपगतानां ज्ञानावरणादिकर्मप्रदेशानां यावत् कालेनान्यस्वरूपेण परिणतिं याति कालस्तस्य कालस्य स्थितिरिति संज्ञा, तत्र ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनी-यान्तरायाणामुत्कृष्टस्थितिः सागरोपमानां त्रिंशत्कोटीकोट्यः। मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोट्यः, नामगोत्रयोर्विंशतिकोटीकोट्यः। आयुष्कस्त्रय-स्त्रिंशत्सागरोपमा। जघन्यस्थितिर्वेदनीयस्य द्वादशमुहूर्त्ताः, नामगोत्रयोरष्टौ। शेषाणामन्तर्मुहूर्त्ताः, एतेषां स्थितिबन्धः। अणुभागः कर्मणां रसशक्तिर्वा अनुभागस्तस्य भागोऽनुभागबन्धः। प्रदेशतोऽनुकर्मानुबन्धः कर्मप्रदेशा-स्तच्चैकस्मिन्जीवप्रदेशेऽनन्तानन्तास्तिष्ठन्ति। तेषां बन्धः प्रदेशबन्धः।

उत्थानिका : वह बन्ध चार प्रकार का होता है।

गाथार्थ : [**बंधो**] बन्ध [**पयडि**] प्रकृति [**ठिदि**] स्थिति [**अणुभाग**] अनुभाग [**प्पदेसभेदा**] प्रदेश के भेद से [**चदुविधो**] चार प्रकार का है [**दु**] और [**पयडिपदेसा**] प्रकृति-प्रदेश बन्ध [**जोगा**] योग से [**ठिदिअणुभागा**] स्थिति-अनुभागबन्ध [**कसायदो**] कषाय से [**हुंति**] होता है।। 33 ॥

टीकार्थ : चदुविधो बंधो बन्ध चार प्रकार का होता है। वह कैसे? **पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेस भेदा दु** प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से। वह बन्ध किस का कैसे होता है? **जोगा पयडिपदेसा** अशुभ मन-

वचन–काय से प्रकृति और प्रदेश बन्ध होता है। **ठिदि अणुभागा कसायदो हुंति** स्थिति और अनुभागबन्ध कषाय से होता है। वहाँ ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियों का बन्ध होता है। मिथ्यात्व–असंयम–कषाय और योग के कारण कर्मत्त्व को प्राप्त ज्ञानावरणादि कर्म प्रदेशों का जितने काल पर्यन्त अन्य स्वरूप से परिणति होती है, उस काल की स्थिति संज्ञा है। ज्ञानावरण दर्शनावरण–वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोड़ाकोड़ी सागर है, मोहनीय की 70 कोड़ाकोड़ी सागर, नाम और गोत्र की 20 कोड़ाकोड़ी सागर है। आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागर है।

वेदनीय की जघन्य स्थिति 12 मुहूर्त है, नाम और गोत्र की 8 मुहूर्त है। शेष सभी कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। ये इन का स्थितिबन्ध है।

कर्मों की रस शक्ति अथवा अनुभाग का विभाजन अनुभाग बन्ध है।

प्रदेश से कर्मों का अनुबन्ध अर्थात् जीव के प्रदेश में कर्मों के प्रदेश अनन्तानन्त रहते हैं। उन का बन्ध प्रदेशबन्ध है।

भावार्थ : प्रकृति–स्थिति–अनुभाग व प्रदेश के भेद से बन्ध के चार भेद हैं।

प्रकृतिबन्ध : कर्मों में उन के स्वभाव की प्राप्ति होना, प्रकृतिबन्ध है।

स्थितिबन्ध : आत्मा के साथ कर्मों के रहने की मर्यादा स्थिति है – उस का बन्ध स्थिति बन्ध कहलाता है।

अनुभागबन्ध : कर्मों की फलदान शक्ति को अनुभाग कहते हैं। कर्मों में अनुभाग नियत होना अनुभाग बन्ध है।

प्रदेशबन्ध : बद्ध कर्मों के प्रदेशों की संख्या को प्रदेशबन्ध कहते हैं।

प्रकृति और प्रदेशबन्ध का कारण योग है तथा स्थिति व अनुभागबन्ध का कारण कषाय है।। 33 ॥

पाठभेद : हुंति = होंति। ॥ 33 ॥

विशेष : मेरे विचारानुसार टीका में "तत्र **ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतीनां बन्धः।**" के बाद "**प्रदेशबन्धः**" यह शब्द आवश्यक है।

स्थितिबन्ध के प्रकरण में "**स्थितिरित संख्या**" के स्थान पर "**स्थितिरिति संज्ञा**" ऐसा होना चाहिये।

योग चाहे शुभ हो या अशुभ, दोनों से ही प्रकृति और प्रदेश बन्ध होता है। अतः टीका में "**अत्राशुभमनोवचनकायेभ्यः**" इस पाठ के स्थान पर "**अत्र शुभाशुभमनोवचनकायेभ्यः**" यह पाठ शुद्ध जान पड़ता है।

[**सम्पादक**] ॥ 33 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं संवरस्य भेदद्वयमाह –

गाथा : चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥ 34 ॥

टीका : सो भावसंवरो खलु स भावसंवरो भवति, **खलु** स्फुटम्, स कः? **चेदणपरिणामो** यश्चैतन्यपरिणामः स्वस्वरूपपरिणतिः। किं विशिष्टः? **जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू** समागच्छतः कर्मणः आस्रवनिरोध-हेतुः, स एव चैतन्यपरिणामः **दव्वासवरोहणे अण्णो** द्रव्यास्रवरोधनेऽन्यो द्वितीयः।

उत्थानिका : अब संवर के दो भेदों को कहते हैं –

गाथार्थ : [**जो**] जो [**चेदण परिणामो**] चैतन्य परिणाम [**कम्मस्स**] कर्म के [**आसवणिरोहणे**] आस्रव के निरोध का [**हेदू**] हेतु है [**सो**] वह [**भावसंवरो**] भावसंवर है। [**दव्वासवरोहणे**] द्रव्यास्रव का निरोध [**खलु**] निश्चयतः [**अण्णो**] द्रव्यसंवर है। ॥ 34 ॥

टीकार्थ : सो भावसंवरो खलु वह भावसंवर है। **खलु** निश्चय से। वह कौन? **चेदणपरिणामो जो** चैतन्य परिणाम अर्थात् स्व-स्वरूप परिणति। किस प्रकार? **जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू** आते हुए कर्मों के आस्रव निरोध का हेतु, वही चैतन्यपरिणाम। **दव्वासवरोहणे अण्णो** द्रव्यास्रव का निरोध करना, द्वितीय संवर है।

भावार्थ : जिन चैतन्यमयी परिणामों से कर्म का आना रुक जाता है, उन परिणामों को भावसंवर कहते हैं। द्रव्यास्रव का निरोध होना, द्रव्यसंवर है ।। 34 ।।

•—•—•

उत्थानिका : तस्यैव निरोधने विशेषमाह –

गाथा : वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णादव्वा दव्वसंवरविसेसा ।। 35 ।।

टीका : णादव्वा दव्वसंवरविसेसा द्रव्यसंवरविशेषा ज्ञातव्याः। कतिसंख्योपेताः? **बहुभेया** बहुभेदाः। के ते? इत्याह–**वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य चारित्तं च** तपः समितिगुप्तिः धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयश्चारित्रं च। तत्र तपो द्वादशप्रकारं बाह्याभ्यन्तरभेदात्, अनशनमवमौदर्यं, वृत्तिपरिसंख्यानं, रसपरित्यागः, विविक्तशय्यासनं, कायक्लेशो बाह्यं तपः षड्विधम्। प्रायश्चित्तं, विनयं, वैयावृत्यं, स्वाध्यायः व्युत्सर्गं, ध्यानं चाभ्यन्तरतपः षड्विधम्, समितयः पञ्चप्रकाराः, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण व्युत्सर्गश्चेति। गुप्तयस्त्रिप्रकाराः मनोवचन-कायरूपाः। धर्मो दशप्रकाराः उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमस्तपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि

धर्मा:। अनुप्रेक्षा द्वादशप्रकारा ज्ञातव्या:। अनित्य-अशरण-संसार-एकत्व-अन्यत्व-अशुचित्व-आस्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्माश्चेति। परीषहजय: द्वाविंशतिप्रकारा:, क्षुधा-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-नाग्न्य-अरति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-आक्रोश-वध-याचना-अलाभ-रोग-तृणस्पर्शमल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शनानि। चारित्रत्रयोदशप्रकारं हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरति: पञ्चप्रकारा:। समतास्तुतिवन्दनाप्रतिक्रमणस्वाध्यायप्रत्याख्यानानि षट्, अ: सही, नि: सही चेति चारित्रम्।

उत्थानिका : उस आस्रव निरोध में जो विशेष हैं, उन को कहते हैं –

गाथार्थ : [**वदसमिदीगुत्तीओ**] व्रत, समिति, गुप्ति [**धम्माणुपेहा**] धर्म-अनुप्रेक्षा [**परीसहजओ**] परीषह जय [**य**] और [**चारित्तं**] चारित्र [**बहुभेया**] अनेक प्रकार के [**दव्वसंवरविसेसा**] द्रव्यसंवर के भेद [**णादव्वा**] जानने चाहिये।। 35।।

टीकार्थ : **णादव्वा दव्वसंवर विसेसा** द्रव्यसंवर के भेद जानने चाहिये। द्रव्यसंवर कितने भेदों से युक्त है? **बहुभेया** अनेक भेद हैं। वे कौन से हैं? सो कहते हैं – **वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य चारित्तं** तप, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह जय और चारित्र।

उस में बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से तप बारह प्रकार का है। अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छह बाह्य तप हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये छह आभ्यन्तर तप हैं।

ईर्या-भाषा-एषणा-आदाननिक्षेपण और व्युत्सर्ग ये पाँच प्रकार की समितियाँ हैं।

मन-वचन-काय के भेद से गुप्ति के तीन भेद हैं।

उत्तम क्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्याग-आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं।

अनुप्रेक्षाएं 12 जाननी चाहिये - अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म।

परीषह जय के 22 भेद हैं - क्षुधा-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-नाग्न्य, अरति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-आक्रोश-वध-याचना-अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञा-अज्ञान और अदर्शन।

चारित्र के 13 भेद हैं - हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परीग्रह से विरति रूप पाँच प्रकार के व्रत-समता-स्तुति-वंदना-प्रतिक्रमण-स्वाध्याय-प्रत्याख्यान ये छह आवश्यक तथा अः सही और निःसही।

भावार्थ : 5 व्रत, 5 समिति, 3 गुप्ति, 10 धर्म, 12 अनुप्रेक्षा, 22 परीषहजय, 13 चारित्र ये सब द्रव्यसंवर के कारण हैं।। 35 ॥

पाठभेद : णादव्वा = णायव्वा।
दव्वसंवरविसेसा = भावसंवरविसेसा। ।। 35 ॥

विशेष : गाथा में वद शब्द है। टीकाकार ने वद शब्द स्वीकार किया है किन्तु वर्णन तप का किया है।

तप संवर व निर्जरा का विशेष कारण है, परन्तु गाथा में वद के स्थान पर तप का वर्णन किया जाना आश्चर्यकारी है।। 35 ॥

•—•—•

उत्थानिका : साम्प्रतं निर्जराभेदद्वयमाह -

गाथा : जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥ 36 ॥

टीका : जेण भावेण सडदि येन परिणामेण सडति गलति, किं तत्? **कम्मपुग्गलं** कर्मरूपं पुद्गलम्। कथंभूतम्? **भुत्तरसं** भुक्तो रसः शक्तिर्यस्य तद्भुक्तरसम्। केन कृत्वा? **जह कालेण तवेण य** यथा कालेन सविपाकरूपेण तपसा च, हठादविपाकरूपेण इत्येवं द्विविधानिर्जरा ज्ञातव्या। तस्सडणं च, तत्कर्मणो गलनं च एषा द्रव्यनिर्जरा इति द्विप्रकारा ज्ञातव्या।

उत्थानिका : अब निर्जरा के दो भेदों को कहते हैं –

गाथार्थ : [जहकालेण] यथाकाल में **[य]** और **[तवेण]** तप से **[भुत्तरसं]** जिस का फल भोग किया है, ऐसा **[कम्मपुग्गलं]** कर्मपुद्गल **[जेण]** जिस **[भावेण]** भाव से **[सडदि]** झडता है **[च]** और **[तस्सडणं]** कर्मों का झड़ना **[इदि]** ऐसी **[णिज्जरा]** निर्जरा **[दुविहा]** दो प्रकार की **[णेया]** जाननी चाहिये।

टीकार्थ : जेण भावेण सडदि जिस परिणाम से सड़ता है, गलता है, क्या गलता है? **कम्मपुग्गलं** कर्म रूप पुद्गल, किस प्रकार? **भुत्तरसं** भोग ली है रस यानि शक्ति जिस की, किस के द्वारा? **जह कालेण तवेण य** जैसे कालानुसार सविपाक रूप से तथा तप से हठपूर्वक पका कर के यानि अविपाक रूप से। ये निर्जरा के दो भेद जानने चाहिये। **तस्सडणं** और उन कर्मों का गलना द्रव्यनिर्जरा है, ऐसे निर्जरा के दो प्रकार जानने चाहिये।

भावार्थ : उदयगत कर्म फल दे कर झड़ जाते हैं, वह सविपाक निर्जरा है। कर्मों को उदयकाल से पूर्व ही उदय में लाकर खिराना, अविपाक निर्जरा है।

जिन परिणामों से कर्म का एकदेश क्षय होता है, उन परिणामों को भाव निर्जरा कहते हैं तथा कर्मों का झड़ जाना द्रव्यनिर्जरा है।। 36।।

उत्थानिका : इदानीं मोक्षस्वरूपमाह –

गाथा : सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।
णेओ स भावमुक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो॥ 37॥

टीका : णेओ स भावमुक्खो स भावमोक्षो ज्ञेयः। परिणाममोक्षः, सः कः? **जो अप्पणो हु परिणामो** आत्मनश्चारित्रावरणीयक्षयात् यः समुत्पद्यते निर्मलपरिणामः, स भावमोक्ष इति। **दव्वविमुक्खो कम्मपुहभावो** द्रव्यमोक्षस्य, पुनः कर्मभावसकाशादात्मनः पृथग्भावः शुद्धचैतन्यरूपाव–स्थितिरित्यर्थः।

उत्थानिका : अब मोक्ष के स्वरूप को कहते हैं –

गाथार्थ : [जो] जो **[अप्पणो]** आत्मा का **[परिणामो]** परिणाम **[सव्वस्स]** सम्पूर्ण **[कम्मणो]** कर्मों के **[खयहेदू]** क्षय का हेतु है **[स]** वह **[हु]** निश्चयतः **[भावमुक्खो]** भावमोक्ष है **[य]** और **[कम्मपुहभावो]** कर्म का पृथक् होना **[दव्वविमुक्खो]** द्रव्य मोक्ष **[णेओ]** जानना चाहिये।। 37॥

टीकार्थ : णेओ स भावमुक्खो उसे भावमोक्ष जानो, परिणाममोक्ष जानो, वह कौन? **जो अप्पणो हु परिणामो** आत्मा के चारित्र मोहनीय के क्षय से जो निर्मल परिणाम उत्पन्न होता है, वह भावमोक्ष है। **दव्वविमुक्खो कम्मपुहभावो** पुनः कर्मभाव का आत्मा से पृथक् हो जाना अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूप में आत्मा की अवस्थिति द्रव्यमोक्ष है।

भावार्थ : जिन परिणामों से सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाता है, उन परिणामों को भावमोक्ष कहते हैं। कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना, द्रव्यमोक्ष है।। 37॥

पाठभेद : णेओ = णेयो ॥ 37 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं पुण्यपापस्वरूपमाह –

गाथा : **सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।**
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥ 38 ॥

टीका : **पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा** पुण्यं पापं चानुभवति, खलु स्फुटं, के ते? जीवाः, कथंभूतः सन्तः? **सुह–असुहभावजुत्ता** शुभाशुभपरिणामयुक्ताः शुभपरिणामात्पुण्यं अशुभपरिणामात्पापमनुभवन्ति। पुण्यस्य कानिचित्कारणानीत्याह। **सादं सुहाउणामं गोदं** सातावेदनीयं शुभायुर्नामगोत्रम्, एतैश्चिह्नैर्युक्तं पुण्यम्। पापस्य कानि? **पराणि पावं च** असाताशुभायुर्नामगोत्राणि पापं च स्फुटम्।

उत्थानिका : अब पुण्य और पाप के स्वरूप को कहते हैं –

गाथार्थ : [**सुह**] शुभ [**असुह**] अशुभ [**भावजुत्ता**] भाव से युक्त [**जीवा**] जीव [**खलु**] निश्चय से [**पुण्णं**] पुण्य [**पावं**] पाप रूप [**हवंति**] होते हैं। [**सादं**] साता वेदनीय [**सुहाउ**] शुभायु [**णामं**] शुभ नाम [**गोदं**] शुभ गोत्र [**पुण्णं**] पुण्य है [**च**] और [**पराणि**] अन्य [**पावं**] पाप है ॥ 38 ॥

टीकार्थ : **पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा** पुण्य और पाप का अनुभव करता है, **खलु** निश्चय से, वे कौन? जीव। कैसे होते हुए? **सुह असुह भावजुत्ता** शुभाशुभ परिणाम से युक्त, शुभ परिणाम से पुण्य व अशुभ परिणाम से पाप का अनुभव करता है। पुण्य के क्या कारण हैं? सो कहते हैं – **सादं सुहाउ णामं गोदं** सातावेदनीय, शुभायु, शुभनाम, शुभ गोत्र इन

चिह्नों से युक्त पुण्य होता है। पाप के कारण क्या है? **पराणि पावं च** असातावेदनीय, अशुभायु, अशुभनाम, अशुभगोत्र ये निश्चय से पाप हैं।

भावार्थ : शुभ भावों से युक्त जीव पुण्य रूप होता है, अशुभ भाव से युक्त जीव पाप रूप होता है। सातावेदनीय, शुभायु, शुभ नाम व शुभ गोत्र ये पुण्य की प्रकृतियाँ हैं, इन से विपरीत सम्पूर्ण कर्म पापकर्म की प्रकृतियाँ हैं।। 38।।

उत्थानिका : सम्प्रति पूर्वोक्तस्य मोक्षस्य कारणमाह –

गाथा : सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं हवदि।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।। 39।।

टीका : हवदि भवति, किं तत् **कारणं** हेतुः कस्य **मोक्खस्स** मोक्षस्य कारणं, **सम्मद्दंसणणाणं चरणं** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रम्। कदा? **ववहारा** व्यवहारनयापेक्षया, **णिच्छयदो तत्तिय मइओ णिओ अप्पा** निश्चयनयापेक्षया तत्त्रियात्मको निजात्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूपो यदेव रत्नत्रयम् स एवात्मा तदेव रत्नत्रयमित्यर्थः।

उत्थानिका : अब पूर्वकथित मोक्ष के कारण को कहते हैं –

गाथार्थ : [ववहारा] व्यवहार से **[सम्मद्दंसणणाणंचरणं]** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र **[मोक्खस्स]** मोक्ष का **[कारणं]** कारण **[हवदि]** होता है। **[णिच्छयदो]** निश्चय नय से **[तत्तियमइओ]** उन त्रितयात्मक **[णिओ]** निज **[अप्पा]** आत्मा [को मोक्ष का कारण जानो]।। 39।।

टीकार्थ : हवदि होता है, क्या होता है? **कारणं** हेतु होता है। किस का? **मोक्खस्स** मोक्ष का कारण होता है। **सम्मद्दंसणणाणं चरणं** सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, कब? व्यवहार नय की अपेक्षा से। णिच्छयदो तत्तिय मइओ **णिओ अप्पा** निश्चय नय की अपेक्षा से। **णिच्छयदो तत्तिय**

मइओ णिओ अप्पा निश्चय नय की अपेक्षा से। उस त्रितयात्मक निजात्मा अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन रत्नत्रयस्वरूप आत्मा है। जो रत्नत्रय है, वही आत्मा है तथा जो आत्मा है, वही रत्नत्रय है।

भावार्थ : व्यवहार नय भेदग्राहक होता है। उस की अपेक्षा से रत्नत्रय मोक्ष का कारण है।

निश्चयनय स्व-द्रव्य सापेक्ष एवं अभेदग्राही होता है। उस की अपेक्षा से रत्नत्रयात्मक आत्मा ही मोक्ष का कारण है।। 39 ॥

पाठभेद :	मोक्खस्स	=	मुक्खस्स	
	हवदि	=	जाणे	।। 39 ॥

●—●—●

उत्थानिका : अयमर्थं दृढयन्नाह –

गाथा : रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाण मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥ 40 ॥

टीका : तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा तस्मात् तत्त्रियात्मको दर्शनज्ञानचारित्ररूपो भवति, हि स्फुटं मोक्षस्य हेतुरात्मा, तस्मात् कस्माद्यस्मात्, **रयणत्तयं ण वट्टइ**, रत्नत्रयं न वर्तते, क्व? **अण्णदवियम्मि**, अन्यस्मिन्शरीरादिद्रव्ये, किं कृत्वा? **अप्पाण मुइत्तु** आत्मानं मुक्त्वा, त्यक्त्वा। आत्मनो रत्नत्रयं वर्तते न परद्रव्ये।

उत्थानिका : इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं –

गाथार्थ : [**रयणत्तयं**] रत्नत्रय [**अप्पाण**] आत्मा को [**मुइत्तु**] छोड़ कर [**अण्णदवियम्हि**] अन्य द्रव्यों में [**ण**] नहीं [**वट्टइ**] रहता। [**तम्हा**]

इसलिए [**तत्तियमइओ**] उन त्रितयात्मक [**आदा**] आत्मा [**हु**] ही [**मोक्खस्स**] मोक्ष का [**कारणं**] कारण [**हवदि**] होता है। 40।

टीकार्थ : तम्हा तत्तियमइओ हवदि हु मोक्खस्स कारणं आदा इसलिए उन त्रितयात्मक अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप आत्मा निश्चय से मोक्ष का हेतु होता है। ''इसलिए'' ऐसा क्यों कहते हैं? क्योंकि **रयणत्तयं ण वट्टइ** रत्नत्रय नहीं रहता है। कहाँ नहीं रहता है? **अण्णदवियम्मि** अन्य शरीरादिक द्रव्य में। क्या कर के? **अप्पाण मुइत्तु** आत्मा को छोड़ कर के, आत्मा का त्याग कर के रत्नत्रय परद्रव्य में नहीं रहता है।

भावार्थ : रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के अनुजीवी गुण हैं। आत्मा के अतिरिक्त वे गुण किसी भी द्रव्य में नहीं पाये जाते। जब उन तीनों की पूर्णता आत्मा में हो जाती है, तब आत्मा मोक्ष को प्राप्त करता है। अत: निश्चय नय की अपेक्षा से त्रितयात्मक आत्मा ही मोक्ष का कारण है ।। 40 ।।

पाठभेद : हवदि = होदि
मोक्खस्स = मुक्खस्स ।। 40 ।।

●—●—●

उत्थानिका : रत्नत्रयस्वरूपमाह –

गाथा : जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ।। 41 ।।

टीका : सम्मत्तं सम्यक्त्वं भवति। किं तत्? **जीवादीसद्दहणं** जीवादीनां श्रद्धानरुचि:, **रूपमप्पणो तं तु** तत् सम्यक्त्वं पुनरात्मनो रूपं नान्यस्य। **णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि**–स्व–परपरिच्छेदकं ज्ञानं नियमेन भवति यस्मिन्सम्यक्त्वे सति। किं विशिष्टं ज्ञानम्? **दुरभिणिवेसविमुक्कं,**

संशयविमोहविभ्रमविवर्जितं दर्शने सति यज्ज्ञानमुत्पद्यते।

उत्थानिका : रत्नत्रय का स्वरूप कहते हैं –

गाथार्थ : [**जीवादीसद्दहणं**] जीवादिकों का श्रद्धान करना [**सम्मत्तं**] सम्यक्त्व है। [**तं**] वह [**अप्पणो**] आत्मा का [**रूवं**] रूप है। [**तु**] और [**जम्हि**] जिस के [**सदि**] होने पर [**दुरभिणिवेसविमुक्कं**] कु-अभिनिवेश से विमुक्त [**सम्मं**] सम्यक् [**णाणं**] ज्ञान [**खु**] नियम से [**होदि**] होता है॥ 41॥

टीकार्थ : **सम्मत्तं** सम्यक्त्व होता है। क्या होता है? **जीवादीसद्दहणं** जीवादिकों का श्रद्धान, रुचि **रूवमप्पणो तं तु** पुनः वह सम्यक्त्व आत्मा का ही रूप है, अन्य का नहीं। **णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि** जिस के अर्थात् सम्यक्त्व के होने पर स्व पर का बोध कराने वाला ज्ञान नियम से होता है। कैसा है वह ज्ञान? **दुरभिणिवेसविमुक्कं** दर्शन होने पर संशय-विमोह-विभ्रम से रहित ज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ : जीवादि सप्ततत्त्व, नवपदार्थ, षड्द्रव्य अथवा पंचास्तिकायों का श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वरूप है। सम्यग्दर्शन के होने पर ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान हो जाता है॥ 41॥

•—•—•

उत्थानिका : तत्कथंभूतमित्याह –

गाथा : **संसय-विमोह विब्भम-विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।**
गहणं सम्मण्णाणं सायारमणेयभेयं तु॥ 42॥

टीका : **सम्मण्णाणं** सम्यग्ज्ञानं भवति। किं तत्? **गहणं** ग्रहणम्। कस्य? **अप्पपरसरूवस्स** आत्मनः स्वरूपस्य परवस्तुनः स्वरूपस्य, कथंभूतं ग्रहणम्? **संसयविमोहविब्भमविवज्जियं**, संशयः हरिहरादिज्ञानं

प्रमाणं जैनं वा, **विमोह** अनध्यवसायो गच्छत्तृणस्पर्शपरिज्ञानम्, विभ्रमः शुक्तिकारजतशकलं यद्विज्ञानमिति। तद् ग्रहणं किं विशिष्टम्? **सायारमणेयभेयं** तु, साकारं सविकल्पमवग्रहेहावायधारणारूपकमनेक-भेदम् च।

उत्थानिका : वह [सम्यग्ज्ञान] कैसा होता है? उसे कहते हैं –

गाथार्थ : [**संशय**] संशय [**विमोह**] विमोह [**विब्भम**] विभ्रम से [**विवज्जियं**] रहित [**अप्पपरसरूवस्स**] स्व और पर स्वरूप का [**सायार**] आकार सहित [**गहणं**] ग्रहण करना [**सम्मण्णाणं**] सम्यग्ज्ञान है [**तु**] और वह [**अणेयभेयं**] अनेक प्रकार का है।। 42।।

टीकार्थ : सम्मण्णाणं सम्यग्ज्ञान होता है। वह क्या है? **गहणं** ग्रहण, किस का? **अप्पपरसरूवस्स** आत्मा के स्वरूप का और परवस्तु के स्वरूप का, किस प्रकार से ग्रहण? **संशयविमोहविब्भमविवज्जियं** हरिहरादिकों का ज्ञान प्रमाण है या जैनों का? ऐसा संशय। विमोह – चलते हुए जीव को तृणस्पर्श के परिज्ञान की अनध्यवसायता, विभ्रम–शुक्ति [सीप] को रजत [चाँदी] के रूप में जानना। वह ग्रहण कैसे होता है? **सायारमणेयभेयं तु** साकार यानि सविकल्प तथा अवग्रह, ईहा, आवाय और धारणा रूप अनेक भेदों वाला है।

भावार्थ : विरुद्ध कोटियों में संस्पर्श करने वाला ज्ञान संशय है। अनिर्णयात्मक ज्ञान विमोह है तथा विपरीत कोटि को ग्रहण करने वाला ज्ञान विभ्रम है। इन तीन दोषों से रहित हो कर स्व–द्रव्य एवं पर–द्रव्यों का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। वह सविकल्प एवं अनेक भेदों वाला है।। 42।।

●—●—●

उत्थानिका : मत्यादिभेदाद्दर्शनज्ञानयोः को भेद इत्याह –

गाथा : जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसऊण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समए॥ 43॥

टीका : दंसणमिदि भण्णये समए तद्दर्शनमितिहेतोर्भण्यते। क्व? समये जिनागमे। तत्किम्? **जं सामण्णं गहणं** यत् सामान्यग्रहणं वस्तुसत्तावलोकनं करोति। केषाम्? **भावाणं** पदार्थानाम्, किं त्यक्त्वा? **अविसेसऊण अट्ठे** – अविशेष्यार्थान् भेदमकृत्वा इदं कृष्णमिदं नीलमित्यादिपरिच्छित्तिम्। अत्राह परा ननु दर्शनं तावत्स्वभावभासकं ज्ञानं च परार्थावभासकं भिन्नानां भावानां सामान्यग्रहणमिति, दर्शनस्य कथं घटते? यतस्तदवलोकने ज्ञानस्य प्रयोजनम्। अत्र निराकरणार्थमिदमाह, **णेव कट्टुमायारं** यतो दर्शनम्, प्रथमसमये नैव कर्तुं शक्नोति, भेदमित्थभूतमिति, जलस्नानोत्थितपुरुषसम्मुखवस्त्वव-लोकनवत्। अतो दर्शनं भण्यते किंचिदन्ये तत्प्रयोजनं ज्ञानस्य न पुनः वस्तुसंज्ञावलोकनम्, तस्मात्स्वपरावभासकं दर्शनं किन्तु निर्विकल्पं ज्ञानं पुनः स्वपरावभासकं यतः अवग्रहेहावायधारणाग्रे समुत्पद्यन्ते।

उत्थानिका : मत्यादि के भेद से दर्शन और ज्ञान में क्या भेद है? उसे कहते हैं –

गाथार्थ : [**अट्ठे**] पदार्थ के [**अविसेसऊण**] विशेष अंश को ग्रहण किये बिना [**आयारं**] आकार को [**णेव**] नहीं [**कट्टु**] कर के [**भावाणं**] पदार्थों का [**जं**] जो [**सामण्णं**] सामान्य [**गहणं**] ग्रहण करना [**दंसणं**] दर्शन है [**इदि**] ऐसा [**समए**] शास्त्र में [**भण्णए**] कहा है।

टीकार्थ : दंसणमिदि भण्णए समए वह दर्शन है, ऐसा कहा गया है।

कहाँ कहा गया है? समय में अर्थात् जिनागम में। वह दर्शन क्या है? **जं सामण्णं गहणं** जो सामान्य ग्रहण अर्थात् वस्तु की सत्ता का अवलोकन करता है। किन का अवलोकन करता है? **भावाणं** पदार्थों का, किन को छोड़ कर? **अविसेसऊण अट्ठे** अविशेष रूप से अर्थात् यह काला है, यह नीला है इस प्रकार पदार्थ का भेद न करते हुए अवलोकन करता है।

शंका : यहाँ पर शंकाकार कहता है कि – दर्शन स्वभावभासक ज्ञान है और परार्थावभासक भिन्न भावों का सामान्य ग्रहण है। यह लक्षण दर्शन में कैसे घटित होता है? क्योंकि अवलोकन करना, ज्ञान का प्रयोजन है।

समाधान : अब यहाँ निराकरण करने के लिए कहते हैं – **णेव कट्टुमायारं** जो दर्शन है वह प्रथम समय में "यह ऐसा है" इस प्रकार का भेद नहीं कर सकता है। जैसे जलस्नान कर के खड़े हुए पुरुष एकाएक सम्मुख में उपस्थित वस्तु का अवलोकन करने पर भेद नहीं कर पाते हैं। इसलिए दर्शन कहा है।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं दर्शनपूर्वकं ज्ञानमाह –

गाथा : **दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा।**
जुगवं जम्हा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि॥ 44॥

टीका : दंसणपुव्वं णाणं दर्शनपूर्वकं विषयविषयिणोः सन्निपातो दर्शनं तदनन्तरमर्थग्रहणं किंचिदिति ज्ञानं यथा बीजाङ्कुरौ। केषाम्? **छदमत्थाणं** – छद्मस्थानां किंचिद्दर्शनज्ञानावरणीययुक्तानाम्, तेषां च **ण दोण्णि उवओगा जुगवं जम्हा** दर्शनज्ञानोपयोगद्वयं युगपत् यस्मान्न तेषां अतो दर्शनपूर्वकं ज्ञानं बीजाङ्कुरवत्। **केवलिणाहे** तु केवलज्ञानयुक्ते पुनः **जुगवं तु ते दो वि** युगपत्तौ द्वौ भास्करप्रकाशप्रतापवत्।

उत्थानिका : अब दर्शनपूर्वक ज्ञान को कहते हैं –

गाथार्थ : [**छद्मत्थाणं**] छद्मस्थों को [**दंसणपुव्वं**] दर्शन पूर्वक [**णाणं**] ज्ञान होता है। [**जम्हा**] क्योंकि [**दोण्णि**] दोनों [**उवओगा**] उपयोग [**जुगवं**] एक साथ [**ण**] नहीं होते [**तु**] परन्तु [**केवलिणाहे**] केवलिनाथ को [**ते**] वे [**दो वि**] दोनों भी [**जुगवं**] एक साथ होते हैं।। 44 ॥

टीकार्थ : दंसणपुव्वं णाणं दर्शनपूर्वक, विषय और विषयी का सन्निपात दर्शन है, उस के बाद अर्थ ग्रहण करना ज्ञान है। जैसे बीज और अंकुर। किन को? **छद्मत्थाणं** छद्मस्थों को, दर्शनावरणीय एवं ज्ञानावरणीय कर्म से युक्त जीवों को, उन को **ण दोण्णि उवओगा जुगवं जम्हा** दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग दोनों युगपत् नहीं होते, अतः बीजपूर्वक अंकुर के समान दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। **केवलिणाहे तु** पुनः केवलज्ञान से युक्त जीवों को **जुगवं तु ते दो वि** सूर्य के प्रकाश एवं प्रताप के समान दोनों युगपत् होते हैं।

भावार्थ : छद्म यानि आवरण। ज्ञानावरण और दर्शनावरण ये दोनों छद्म हैं। इन में स्थ यानि निवास करने वाले अल्पज्ञानी जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार छद्मस्थ जीवों को दर्शनपूर्वक ज्ञानोपयोग होता है।

विषय और विषयी दोनों के प्रथम मिलन को दर्शनोपयोग कहते हैं। दर्शन के पश्चात् वस्तुस्वरूप के बोध को ज्ञानोपयोग कहते हैं। छद्मस्थों को दोनों उपयोग एक साथ नहीं है।

सूर्य का प्रकाश एवं प्रताप एक साथ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार केवलज्ञानी को दोनों ही उपयोग एक साथ होते हैं।। 44 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं चारित्रमाह –

गाथा : असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ति य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिण भणियं॥ 45॥

टीका : जाण चारित्तं जानीहि चारित्रम्। किं तत्? **असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य** अशुभात्पापास्रवरूपात् निवृत्तिः शुभपुण्यास्रवद्वाररूपेण प्रवृत्तिश्च। एतत् **वदसमिदिगुत्तिरूवं** व्रतसमितिगुप्तिरूपम्, कस्मात्? **ववहारणया दु** व्यवहारनयापेक्षया तु, किं विशिष्टम्? **जिणभणियं**–वीतराग–प्रतिपादितम्, भावचारित्रं पुनरहं ब्रवीमि परिणामः।

उत्थानिका : अब चारित्र को कहते हैं –

गाथार्थ : [**असुहादो**] अशुभ से [**विणिवित्ती**] निवृत्ति [**य**] और [**सुहे**] शुभ में [**पवित्ति**] प्रवृत्ति [**जिणभणियं**] जिनेन्द्रकथित [**चारित्तं**] चारित्र है (ऐसा) [**ववहारणया**] व्यवहार नय से [**जाण**] जानो [**दु**] और [**वह**] [**वदसमिदिगुत्तिरूवं**] व्रत, समिति, गुप्तिरूप है॥45॥

टीकार्थ : जाण चारित्तं चारित्र जानो। वह चारित्र क्या है? **असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ति य** अशुभ से, पापास्रव रूप से निवृत्ति और शुभ पुण्यास्रव के द्वार के रूप से प्रवृत्ति। यह **वदसमिदिगुत्तिरूवं** व्रत, समिति, गुप्तिरूप है। किस अपेक्षा से? **ववहारणया दु** व्यवहार नय की अपेक्षा से, उस की क्या विशेषता है? **जिणभणियं** वीतरागी ने प्रतिपादित किया है। पुनः भावचारित्र [परिणाम] को मैं कहूँगा।

भावार्थ : जो क्रिया पाप से बचाती है एवं शुभ में रमाती है, वह चारित्र है, ऐसा व्यवहार नय से जिनेन्द्र देव ने कहा है।

पंच पापों से विरति व्रत हैं – वे पाँच हैं।

सम्यक् रूप से क्रिया का आचरण समिति है, वे भी पाँच हैं।

सम्यक् प्रकार से योग का निग्रह करना गुप्ति है, वे तीन हैं।

इस प्रकार व्यवहार चारित्र तेरह प्रकार का है।। 45 ।।

●–●–●

उत्थानिका : इदानीं सम्यक् चारित्रमाह –

गाथा : बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं सम्मं परमचारित्तं ।। 46 ।।

टीका : तं सम्मं परमचारित्तं तत्सम्यक्परमचारित्रं भवति। किं विशिष्टम्? **जिणुत्तं** जिनैः प्रतिपादितं चारित्रम्। कस्य? **णाणिस्स** ज्ञानिनो यथाख्यातमित्यर्थः। तत् किम्? **जं बहिरब्भंतरकिरियारोहो** यद्बाह्याभ्यन्तरक्रियारोधः। तत्र बाह्यो व्रताचरणादयः, आभ्यन्तरे व्रती शीलवानित्यादयः किमर्थं क्रियारोधः? **भवकारणप्पणासट्ठं** संसारोत्पत्तिविनाशार्थम्। गाथा –

णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणो मुक्कसयलवावारो।
जो एहा वच्छगओ सो जोई णत्थि त्ति संदेहो ।।

इत्यर्थः

उत्थानिका : अब सम्यक् चारित्र को कहते हैं –

गाथार्थ : [भवकारणप्पणासट्ठं] भवकारणों के विनाशार्थ **[णाणिस्स]** ज्ञानी का **[जं]** जो **[बहिरब्भंतर किरिया रोहो]** बाह्याभ्यंतर क्रिया का रोकना **[तं]** वह **[जिणुत्तं]** जिनेन्द्रकथित **[सम्मं]** सम्यक् **[परम चारित्तं]** श्रेष्ठ चारित्र है।

टीकार्थ : तं सम्मं परमचारित्तं वह सम्यक् परम चारित्र होता है। उस

की क्या विशेषता है? **जिणुत्तं** जिनेन्द्र के द्वारा कहा हुआ चारित्र है। किस का? **णाणिस्स** ज्ञानी का यथाख्यात चारित्र है, यह अर्थ है। वह क्या? **जं बहिरब्भंतरकिरियारोहो** जो बाह्य और आभ्यंतर क्रिया को रोकना है, उस में व्रताचरण आदि बाह्यक्रियाएं हैं तथा व्रती का [illegible] [[illegible]] होना आभ्यंतर क्रिया है। क्रिया का निरोध क्यों किया जाता है? **भवकारणप्पणासट्ठं** संसार की उत्पत्ति का विनाश करने के लिए। गाथा –

जिस ने श्वासों को जीत लिया है, जिस के नेत्र निष्पन्द हैं, जो सम्पूर्ण व्यापारों से मुक्त है, जो पर के वश नहीं है, वह योगी है, इस में कोई सन्देह नहीं है।

यह अर्थ है।

भावार्थ : बाह्यक्रिया एवं आभ्यन्तर क्रियाओं के रुक जाने पर आत्मा में जो स्थिरता प्राप्त होती है, उसे परम सम्यक् चारित्र अथवा यथाख्यात चारित्र कहा जाता है। वही मोक्ष का कारण है ।। 46 ।।

पाठभेद : तं सम्मं परमचारित्तं = तं परमं सम्मचारित्तं ।। 46 ।।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं द्विविधमपि चारित्रं मोक्षकारणं भवतीत्याह –

गाथा : दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे झाऊण जं मुणी णियमा।

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ।। 47 ।।

टीका : तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह तस्मात्कारणात्प्रयत्न-चेतसः सन्तो यूयं ध्यानं समभ्यसत, तस्मात् कस्मात्? यस्मात् **पाउणदि** प्राप्नोति, कोऽसौ? **मुणी** मुनिः कथम्? **णियमा** निश्चयेन, क्व प्राप्नोति? **झाणे** ध्याने स्थित इत्यर्थः। किं प्राप्नोति? **दुविहं पि** द्विविधमपि चारित्रम्। कथंभूतम्? **मोक्खहेउं** मोक्षकारणमिति।

उत्थानिका : अब दोनों भी चारित्र मोक्ष के कारण होते हैं, ऐसा कहते हैं–

गाथार्थ : [**जं**] जो [**मुणी**] मुनिगण [**दुविहं पि**] दोनों ही [**मोक्खहेउं**] मोक्षहेतुओं को [**णियमा**] नियम से [**झाणे**] ध्यान में [**झाउण**] ध्या लेते हैं [**तम्हा**] इसलिए [**पयत्तचित्ता**] प्रयत्नचित्त से [**झाणं**] ध्यान का [**जूयं**] तुम सब [**समब्भसह**] अभ्यास करो।। 47 ।।

टीकार्थ : तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह उस कारण से प्रयत्नचित्त हो कर तुम सब ध्यान का अभ्यास करो। अभ्यास क्यों करें? क्योंकि **पाउणदि** प्राप्त करता है, कौन प्राप्त करता है? **मुणी** मुनि, किस प्रकार? **णियमा** निश्चय से, कहाँ प्राप्त करता है? **झाणे** ध्यान में स्थित हो कर प्राप्त करता है, यह अर्थ है, क्या प्राप्त करता है? **दुविहं पि** दोनों ही प्रकार का चारित्र, वह कैसा है? **मोक्खहेउं** मोक्ष का कारण है।

भावार्थ : व्यवहार रत्नत्रय एवं निश्चय रत्नत्रय की सिद्धि ध्यान के द्वारा ही होती है। अतः, हे भव्यो! यदि तुम मुमुक्षु हो अर्थात् मोक्ष के इच्छुक हो, तो सावधान हो कर ध्यान का अभ्यास करो।। 47 ।।

पाठभेद :	मोक्खहेउं	=	मुक्खहेउं	
	झाणे झाऊण	=	झाणे पाउणदि	।। 47 ।।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं आचार्यः शिष्यान् प्रति शिक्षामाह –

गाथा : मा मुज्झह मा रज्जह मा रूसह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए।। 48 ।।

टीका : अहो शिष्याः! **थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए** स्थिरमिच्छत यदि चित्तं किमर्थम्? विचित्रध्यानप्रसिध्यर्थम्। तदा मा

मुज्झह मा मोहं गच्छत, **मा रज्जह** मा रागं कुरुत, **मा रूसह** मा रोषं कुरुत, केषु विषयेषु? **इट्ठणिट्ठअत्थेसु** इष्टानिष्टार्थेषु।

उत्थानिका : अब आचार्य शिष्यों को शिक्षा देते हुए कहते हैं –

गाथार्थ : [विचित्तझाणप्पसिद्धीए] विचित्र ध्यान की प्रसिद्धि के लिए **[जइ]** यदि **[चित्तं]** चित्त को **[थिरं]** स्थिर करने की **[इच्छह]** इच्छा करते हो तो **[इट्ठणिट्ठअत्थेसु]** इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में **[मा मुज्झह]** मोह मत करो **[मा रज्जह]** राग मत करो **[मा रूसह]** रोष मत करो ।। 48 ।।

टीकार्थ : अहो शिष्यो ! थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए चित्त को स्थिर करना चाहते हो, किसलिए? विचित्र ध्यान की सिद्धि के लिए, तब **मा मुज्झह** मोह को प्राप्त मत होओ। **मा रज्झह** राग मत करो। **मा रूसह** रोष मत करो। किन विषयों में? **इट्ठणिट्ठअत्थेसु** इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में।

भावार्थ : मन की स्थिरता के लिए आवश्यक है कि चंचलता के कारणभूत संकल्प-विकल्पों में मन को लीन नहीं करें। संकल्प-विकल्पों से बचने के लिए इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में राग-मोह एवं रोष नहीं करना चाहिये। मन के स्थिर होने पर ही ध्यान की सिद्धि होती है।। 48 ।।

पाठभेद : मा रूसह = मा दुसह

इट्ठणिट्ठ अत्थेसु = इट्ठणिट्ठ अट्ठेसु ।। 48 ।।

•—•—•

उत्थानिका : साम्प्रतं जपध्यानयोः क्रममाह –

गाथा : पणतीससोलछप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह।

परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं च गुरूवएसेण ।। 49 ।।

टीका : भो शिष्या:! **जवह झाएह** जपत ध्यायत च यूयम्। कानि अक्षराणि? केषां सम्बन्धीनि? **परमेट्ठिवाचयाणं** परमेष्ठिवाचकानाम्, केन प्रकारेण इत्याह – **पणतीससोलछप्पण चदुदुगमेगं च** पञ्चत्रिंशत्–"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।" षोडश "अरिहंतसिद्ध आयरियउवज्झायसाहू।" षट् "अरिहंतसिद्ध।" पञ्च "असिआउसा।" चत्वार:–"अरिहंत।" द्वय–"सिद्धा।" एकम्–"र्हं"। **अण्णं च गुरूवएसेण** अन्यं च गुरु उपदेशेन। सिद्धचक्रे उदिताम्।

उत्थानिका : अब जप और ध्यान के क्रम को कहते हैं –

गाथार्थ : [**परमेट्ठिवाचयाणं**] परमेष्ठी वाचक [**पणतीस**] पैंतीस [**सोल**] सोलह [**छ**] छह [**प्पण**] पाँच [**चउ**] चार [**दुगं**] दो [**च**] और [**एगं**] एक अक्षरी मन्त्र का [**जवह**] जप करो [**झाएह**] ध्यान करो [**च**] और [**अण्णं**] अन्य मन्त्रों का [**गुरूवएसेण**] गुरु के उपदेश से [जप करो और ध्यान करो]।। 49।।

टीकार्थ : भो शिष्यो! **जवह झाएह** आप जप करो और ध्यान करो। किन अक्षरों का? किन के सम्बन्धित? **परमेट्ठिवाचयाणं** परमेष्ठी वाचक। किस प्रकार से? उसे कहते हैं – **पणतीससोलछप्पण चदुदुगमेगं च** – पैंतीस–णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। सोलह–अरिहंतसिद्धआयरिय उवज्झाय साहू। छह–अरहंतसिद्ध। पाँच–**असिआउसा**। चार–अरिहंत। दो–सिद्ध। एक–र्हं। **अण्णं च गुरूवएसेण** अन्य मन्त्रों का जप गुरु के उपदेश से करना चाहिये। सिद्धचक्र में कथित जप भी करना चाहिए।

भावार्थ : धर्मध्यान का पदस्थध्यान नामक एक भेद है। इस ध्यान का

ध्याता मन्त्रवाक्यों का ध्यान करता है। पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो या एक अक्षर का मन्त्र ध्याता के द्वारा ध्याया जाता है। मन्त्र का विशेष वर्णन टीका में किया जा चुका है। इन मन्त्रों के अतिरिक्त मन्त्रों का जप या ध्यान गुरु के उपदेश से ही करना चाहिये।। 49 ॥

पाठभेद : जवह झाएह = जवह झाएह ।। 49 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं कः, कथंभूतो ध्येय इत्याह –

गाथा : णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ 50 ॥

टीका : विचिंतिज्जो विशेषेण चिन्तनीयो भवति, भवतां भो शिष्याः! कोऽसौ? **अप्पा** स्वात्मा, कथंभूतः? **अरिहो** अर्हत्स्वरूपः, पुनः कथम्भूतः? **सुद्धो** शुद्धात्मस्वरूपो द्रव्यभावकर्मरहितः। पुनः किं विशिष्टः? **सुहदेहत्थो** सप्तधातुरहितः पुनः किं विशिष्टः? **णट्ठचदुघाइकम्मो** नष्टचतुर्घातिकर्माः, पुनः किं विशिष्टः? **दंसणसुहणाणवीरियमईओ** अनन्तदर्शनसुखज्ञानवीर्यमयः, समवशरण-विभूतियुक्तो ह्यात्मा ध्येय इत्यर्थः।

उत्थानिका : अब कौन, कैसा ध्येय है? उसे कहते हैं –

गाथार्थ : [णट्ठचदुघाइकम्मो] जिन्होंने चार घातिया कर्म नष्ट कर दिये हैं **[दंसण सुहणाणवीरियमईओ]** जो दर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्यमय हैं, **[सुहदेहत्थो]** जो शुभ देह में स्थित हैं, वह **[सुद्धो]** शुद्ध **[अप्पा]** आत्मा **[अरिहो]** अरिहन्त है। वह **[विचिंतिज्जो]** ध्यान करने योग्य है।। 50 ॥

टीकार्थ : विचिंतिज्जो – भो शिष्यो! आप के द्वारा विशेष चिन्तनीय हैं।

कौन? **अप्पा** स्वात्मा, किस प्रकार? **अरिहो** अर्हत्स्वरूप, पुनः कैसे हैं? **सुद्धो** द्रव्य-भाव कर्म से रहित शुद्धात्मस्वरूप हैं। पुनः क्या विशेषता है? **सुहदेहत्थो** सप्त धातुओं से रहित हैं, पुनः क्या विशेषता है? **णट्ठचदुघाइकम्मो** चार घातियाँ कर्मों को नष्ट किया है। पुनः क्या विशेषता है? **दंसणसुहणाणवीरियमईओ** अनन्तदर्शन-सुख-ज्ञान और वीर्यमय हैं, समवशरण की विभूति से युक्त आत्मा ध्येय है, यह अर्थ है।

भावार्थ : जिन्होंने चार घातियाँ कर्मों का विनाश किया है, जो अनन्तदर्शन-अनन्तज्ञान-अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय से सहित हैं, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से रहित हैं, सप्तधातुओं से रहित शरीर से युक्त हैं, ऐसे अर्हन्त परमात्मा का ध्यान भव्यों को करना चाहिये।। 50।।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं सिद्धो ध्येय इत्याह –

गाथा : **णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।**
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥ 51॥

टीका : **झाएह** ध्यायत यूयम्। कोऽसौ? **अप्पा** आत्मा, किं विशिष्टः? **सिद्धो** अशरीरः, पुनः किं विशिष्टः? **लोयग्गसिहरत्थो** लोकाग्रशिखरस्थितः, पुनः किं विशिष्टः? **णट्ठट्ठकम्मदेहो** नष्टाष्टकर्मस्वरूप इत्थंभूतः, पुनः कथंभूतः? **लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा** लोकान्तर्वर्तिसमस्तवस्तुज्ञायको दृष्टा च युगपद् कीदृगाकारो ध्येयः, **पुरिसायारो** नियतसिद्धपुरुषप्रतिमानराकृतिरूपः।

उत्थानिका : अब सिद्ध ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**णट्ठट्ठकम्मदेहो**] जिन्होंने नष्ट कर दिये हैं कर्म एवं देह [**लोयालोयस्स**] लोक और अलोक का [**जाणओ**] ज्ञायक [**दट्ठा**] दर्शक

[**पुरिसायारो**] पुरुषाकार [**लोयसिहरत्थो**] लोकाग्र शिखर पर स्थित [**अप्पा**] आत्मा [**सिद्धो**] सिद्ध हैं [**झाएह**] तुम उन का ध्यान करो।। 51 ॥

टीकार्थ : झाएह आप ध्यान करो, कौन हैं? **अप्पा** आत्मा, कैसा है? **सिद्धो** शरीर से रहित, पुन: कैसे हैं? **लोयाग्गसिहरत्थो** लोकाग्र शिखर पर स्थित हैं, और कैसे हैं? **णट्ठट्ठकम्मदेहो** अष्ट कर्मों को नष्ट किया है जिन्होंने, ऐसे स्वरूप वाले हैं। पुन: कैसे हैं? **लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा** लोक के अन्दर में स्थित समस्त वस्तुओं के ज्ञाता एवं दृष्टा हैं। कैसा आकार ध्येय है? **पुरिसायारो** वे सिद्ध नित्य ही पुरुष के आकार के समान आकार को धारण करने वाले हैं।

भावार्थ : जिन्होंने अष्ट कर्मों को नष्ट कर दिया है, जो अशरीरी हैं, जो लोकाग्र शिखर पर विराजते हैं, जो लोकालोक को युगपद् जानते व देखते हैं, जो पुरुषाकार को धारण करने वाले हैं, वे सिद्ध प्रभु ध्यान करने वाले ध्याता के लिए उत्तम ध्येय हैं।। 51 ॥

विशेष : गाथा में **लोयसिहरत्थो** लिखा हुआ है, परन्तु टीकाकार ने **लोयाग्गसिहरत्थो** लिखा है।

लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा की टीका में केवल लोक का वर्णन किया है। सिद्ध प्रभु अलोकाकाशवर्ती आकाश को भी जानते हैं।। 51 ॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीमाचार्यो ध्येय इत्याह –

गाथा : दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ सो आयरिओ मुणी झेओ ॥ 52 ॥

टीका : अप्पा इति अध्याहार्य: **झेओ** ध्यातव्या:, कोऽसौ? **अप्पा** स्वात्मा। कथंभूत:? किमितिभणित्वा, **सो आइरिओ मुणी** स आचार्यो

मुनिरहं एकः, **जो अप्पं परं च जुंजइ** य आत्मा परं च सम्बन्धं करोति। क्व? **वीरियचारित्तवरतवायारे** वीर्याचारचारित्राचारवरतपश्चरणाचारो, किं विशिष्टः? **दंसणणाणपहाणे** दर्शनज्ञानप्रधाने, यत्र तस्मिन् दर्शनज्ञानप्रधाने दर्शनपूर्वकेषु सिद्धिरिति भावः।

उत्थानिका : अब आचार्य ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ : [**जो**] जो [**मुणी**] मुनि [**दंसणणाणपहाणं**] दर्शन और ज्ञान की प्रधानता सहित [**वीरियचारित्तवरतवायारे**] वीर्य, चारित्र तथा उत्तम तपाचार में [**अप्पं**] स्वयं को [**च**] और [**परं**] पर को [**जुंजइ**] जोड़ते हैं [**सो**] वे [**आइरिओ**] आचार्य [**झेओ**] ध्येय हैं।। 52॥

टीकार्थ : अप्पा आत्मा [इस शब्द का आध्याहार कर लेना चाहिये] **झेओ** ध्यान करना चाहिये, किस का? **अप्पा** स्वात्मा, किस प्रकार? क्या कह कर **सो आइरिओ मुणी** एक वह आचार्य मुनि मैं हूँ **जो अप्पं परं च जुंजइ** जो आत्मा अन्यों का भी सम्बन्ध करता है। कहाँ? **वीरियचारित्तवरतवायारे** वीर्याचार, चारित्राचार, श्रेष्ठ तपश्चरणाचार, किस प्रकार? **दंसणणाणपहाणे** दर्शन और ज्ञानाचार से युक्त, ये दोनों प्रधान आचार हैं क्योंकि दर्शनाचार पूर्वक ही शेष आचार होते हैं।। 52॥

भावार्थ : जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार ये पाँच आचार हैं। इन का जो स्वयं पालन करते हैं एवं शिष्यों से पालन करवाते हैं - वे आचार्य हैं।। 52॥

●—●—●

उत्थानिका : इदानीमुपाध्यायो ध्येय इत्याह -

गाथा : **जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।**
सो उवज्झाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स॥ 53॥

टीका : **झेओ** इत्यध्याहार्य **सो उवज्झाओ अप्पा** स उपाध्याय: स्वात्मा ध्येय:, किं विशिष्ट:? **जदिवरवसहो** यतिवरवृषभ: प्रधान:, **णमो तस्स** नमस्कारोऽस्तु तस्मै, स: क:? **जो रयणत्तयजुत्तो** यो रत्नत्रययुक्त:, पुन: किं विशिष्ट? **णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो** नित्यं धर्मोपदेशने निरत:।

उत्थानिका : अब उपाध्याय ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं --

गाथार्थ : [**रयणत्तयजुत्तो**] रत्नत्रय से संयुक्त [**जो**] जो [**अप्पा**] आत्मा [**णिच्चं**] हमेशा [**धम्मोवएसणे**] धर्मोपदेश देने में [**णिरदो**] निरत हैं। [**जदिवरवसहो**] यतियों में प्रधान [**सो**] वह [**उवज्झाओ**] उपाध्याय परमेष्ठी हैं। [**तस्स**] उस को [**णमो**] नमस्कार हो।। 53 ॥

टीकार्थ : **झेओ** [ऐसा अध्याहार कर लेना चाहिये] **सो उवज्झाओ अप्पा** वह उपाध्याय स्वात्मा का ध्येय है। वे कैसे हैं? **जदिवरवसहो** यतियों में वृषभ यानि प्रधान हैं, **णमो तस्स** उन को मैं नमस्कार करता हूँ। वे कौन हैं? **जो रयणत्तयजुत्तो** जो रत्नत्रय से युक्त हैं, और कैसे हैं? **णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो** हमेशा धर्म का उपदेश करने में रत हैं।

भावार्थ : जो अंगप्रविष्ठ एवं अंगबाह्य रूप श्रुतज्ञान का निरन्तर पठन करते हैं व भव्य जीवों को पाठन कराते हैं, वे रत्नत्रय से संयुक्त, मुनियों में प्रधान ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी हैं। भव्य जीवों के लिए वे उपाध्याय परमेष्ठी ध्यान का ध्येय हैं।। 53 ॥

पाठभेद : धम्मोवएसणे = धम्मोवदेसणे ।। 53 ॥

●—●—●

उत्थानिका : साधुर्ध्येय इत्याह –

गाथा : **दंसणणाणसमग्गं मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।**
साधयदि णिच्च सुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स॥ 54॥

टीका : **झेओ अप्पा** इत्यध्याहार्य, **झेओ** ध्यातव्य:, कोऽसौ? स्वात्मा। किं स्वरूपो? भणित्वा। **साहू स मुणी** साधु: स: मुनि: **णमो तस्स** नमस्कारोऽस्तु तस्मै, स: क:? **जो हु साधयदि** य: स्फुटं साधयति, किम्? **चारित्तं** चारित्रम्, कथंभूतम्? **सुद्धं** यथाख्यातम्, कदा? **णिच्च** सर्वकालम्। पुन: कथंभूतम्? **दंसणणाणसमग्गं** दर्शनज्ञानसंयुक्तम्, पुनरपि कथंभूतम्? **मग्गं** मार्गम्, कस्य? **मोक्खस्स** मोक्षस्य।

उत्थानिका : साधु ध्येय हैं, ऐसा कहते हैं -

गाथार्थ : [**जो**] जो [**मुणी**] मुनि [**हु**] निश्चयत: [**दंसणणाणसमग्गं**] दर्शन और ज्ञान से युक्त [**मोक्खस्स**] मोक्ष के [**मग्गं**] मार्गस्वरूप [**चारित्तं**] चारित्र को [**णिच्च**] सदा [**सुद्धं**] शुद्धता से [**साधयदि**] साधते हैं [**स**] वह [**साहू**] साधु हैं [**तस्स**] उन्हें [**णमो**] नमस्कार हो।। 54 ॥

टीकार्थ : **झेओ अप्पा** [ऐसा अध्याहार कर लेना चाहिये] **झेओ** ध्यान करना चाहिये। ध्यान कौन करें? आत्मा। किस का? कहते हैं। **साहू स मुणी** साधु, वह मुनि **णमो तस्स** उस को नमस्कार हो, वह कौन है? **जो हु साधयदि** जो निश्चय से साधता है, किसे? **चारित्तं** चारित्र को। कैसे चारित्र को? **सुद्धं** यथाख्यात चारित्र को, कब? **णिच्च** हमेशा, पुन: कैसे हैं? **दंसणणाणसमग्गं** दर्शन और ज्ञान से संयुक्त, और कैसे हैं? **मग्गं** मार्ग हैं, किस के? **मोक्खस्स** मोक्ष के।

भावार्थ : जो मुनिराज निश्चय से दर्शन और ज्ञान से संयुक्त हैं, जो मोक्षमार्ग में उपादेयभूत चारित्र की नित्य शुद्ध साधना करते हैं, वे साधु परमेष्ठी हैं। उन्हें हम नमस्कार करते हैं।। 54 ॥

विशेष : टीका में जो ''भणित्वा'' पाठ है, हमारे दृष्टि में वह अशुद्ध है, उस स्थान पर ''भणति'' चाहिये।। 54 ॥ **[सम्पादक]**

●—●—●

उत्थानिका : शुद्धनिश्चयनयमाश्रित्य कीदृशं ध्यानं इत्याह –

गाथा : जं किंचि वि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छया झाणं॥ 55॥

टीका : तदाहु तं तस्स णिच्छया झाणं तस्मिन् प्रस्तावे हि स्फुटम्, तत्प्रसिद्धमसहायम्, **तस्स** तस्य साधोः, **णिच्छया झाणं**, शुद्धनिश्चयनयेन ध्यानं तदा, **जदा साहू हवे** यदा साधुर्भवन्, कथंभूतः, **णिरीहवित्ती** बाह्याभ्यन्तरप्रसररहितः। **णिज्जियसासो णिप्फंदलोयणोमुक्क-सयलवावारो** इत्यर्थः। किं कुर्वन्, **जं किंचि वि चिंतंतो** यत्किंचिद्रव्यरूपं वा वस्तुचिंतयन् ध्यायन्, किं कृत्वा, **लद्धूणय एयत्तं**, लब्ध्वा च किमेकत्वमयोगित्वम्।

उत्थानिका : शुद्धनिश्चयनय के आश्रय से ध्यान किस प्रकार होता है, उसे कहते हैं –

गाथार्थ : [**जदा**] जब [**साहू**] साधु [**एयत्तं**] एकाग्रता को [**लद्धूणय**] प्राप्त कर के [**जं**] जिस [**किंचि वि**] किसी भी ध्यान करने योग्य वस्तु का [**चिंतंतो**] विचार करता हुआ [**णिरीहवित्ती**] निस्पृह होता है [**तदा**] तब [**हु**] निश्चयतः [**तं**] वह [**तस्स**] उस का [**णिच्छया**] निश्चय [**झाणं**] ध्यान [**हवे**] होता है ॥ 55॥

टीकार्थ : तदा हु तं णिच्छया झाणं उस प्रस्ताव में, **हि** – निश्चय से, वह प्रसिद्ध और असहाय **तस्स** उस साधु के **णिच्छया झाणं** शुद्धनिश्चयनय से तब ध्यान होता है **जदा साहू हवे** जब साधु होता है। कैसा होता है? **णिरीहवित्ती** बाह्याभ्यन्तर विस्तार [इच्छा] से रहित।

जिस ने श्वासों को जीत लिया है, जिस के नेत्र स्पंद रहित हो गये हैं, जो सम्पूर्ण व्यापार से रहित हो चुका है। यह अर्थ है।

क्या करता हुआ? **जं किंचि वि चिंतंतो** जो कुछ द्रव्य रूप का अथवा वस्तु का **चिन्तन** कर के, ध्यान कर के **लद्धूणय एयत्तं** प्राप्त कर के, किस को? एकत्व को, अयोगि अवस्था को।

भावार्थ : जब साधु निस्पृहवृत्तिवान् हो कर एकाग्रता से ध्यान करने योग्य पदार्थ का चिन्तन करता है, उस समय उस साधु को निश्चय से ध्यान की सिद्धि हो जाती है ।। 55 ।।

पाठभेद : णिच्छया ॰ णिच्छयं ।। 55 ।।

●—●—●

उत्थानिका : इदानीं ग्रन्थकारो ध्यानस्वरूपमुक्त्वा शिक्षाद्वारेण ध्यानमाह –

गाथा : मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवइ झाणं ।। 56 ।।

टीका : मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि, अन्यत्किंचिन्मा चेष्टत **यूयम्, मा** जल्पयत, मा चिंतयत, तर्हि किं कुर्मः? तत्किं चेष्टत? तत्किं जल्पत? तत्किं चिन्तयत? **जेण होइ थिरो अप्पा अप्पम्मि रओ** येन चेष्टितजल्पितचिन्तनेन कृत्वा भवति स्थिरो ह्यात्मा आत्मनिरतः, उक्तं च–

तत् ब्रूयात्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परोभवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ।।

इणमेव परं हवइ झाणं यस्मादेतदेव चेष्टितादिकमेव ध्यानं भवति।

उत्थानिका : ग्रंथकार ध्यानस्वरूप का कथन कर के अब शिक्षा के माध्यम से ध्यान का कथन करते हैं –

गाथार्थ : [किं चि] कुछ भी **[मा चिट्ठह]** चेष्टा मत करो **[मा जंपह]**

बोलो मत [**मा चिंतह**] चिंतन मत करो [**जेण**] जिस से [**अप्पा**] आत्मा [**थिरो**] स्थिर [**होइ**] होता है। [**अप्पा**] आत्मा [**अप्पम्मि**] आत्मा में [**रओ**] रममाण होता है [**इणमेव**] यही [**परं**] परं [**झाणं**] ध्यान [**हवइ**] होता है ।। 56 ॥

टीकार्थ : मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंचि आप अन्य कोई चेष्टायें मत करो, मत बोलो, चिन्तन मत करो। तो फिर क्या करें? कौन सी चेष्टा करें? [क्या बोलें?] क्या चिन्तन करें? **जेण होइ थिरो अप्पा अप्पम्मि रओ** जिस चेष्टा को करने से, बोलने से, चिन्तन करने से आत्मा आत्मा में निरत हो कर स्थिर होता है।

कहा है कि –

उसी का कथन करे, उसी के विषय में पूछे, उसी की इच्छा करे, उसी रूप हो जावे, जिस से अविद्यामय रूप से छूट कर विद्यामयता की प्राप्ति होवे।

इणमेव परं हवे झाणं जिस से इन चेष्टादिकों से ध्यान होता है।

भावार्थ : आत्मा में स्थिर होने के लिए अर्थात् परम ध्यान को प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों का परित्याग करना आवश्यक है। अतः ध्याता कुछ भी चिन्तन न करें, कुछ भी न बोलें और कोई भी चेष्टा न करें ॥ 56 ॥

पाठभेद :	किंचि	=	किं वि	
	हवइ	=	हवे	।। 56 ॥

●—●—●

उत्थानिका : महात्मनामिदं, रत्नत्रयात्मका भवतां भव्या इत्याह –

गाथा : तवसुदवदवं चेदा झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियरदा तल्लद्धीए सदा होह ॥ 57 ॥

टीका : तम्हा तत्तिदयरदा तस्मात् तत्त्रितयरता दर्शनज्ञान-चारित्रस्वरूपरताः, किमर्थम्? **तल्लद्धीए** तस्य रत्नत्रयस्य लब्धिस्तस्यैव अथवा तस्य परमपदस्य लब्धिः। **सदा होह** सर्व्वकालं भवत यूयम्। कस्मात्? **जम्हा** यस्मात्, **चेदा झाणरहधुरंधरो हवे** आत्माध्यानरथधुरन्धरो भवेत्। कथंभूतः? सन् **तवसुदवदवं**, तपः श्रुतव्रतवान्।

उत्थानिका : महात्माओं को ऐसे रत्नत्रयात्मक भावों की भावना करनी चाहिये, ऐसा कहते हैं –

गाथार्थ : [**जम्हा**] क्योंकि [**तवसुदवदवं**] तप-श्रुत-व्रतसंपन्न [**चेदा**] आत्मा [**झाणरहधुरंधरो**] ध्यानरूपी रथ को धारण करने में समर्थ [**हवे**] होता है। [**तम्हा**] इसलिए [**तल्लद्धीए**] उस ध्यान की प्राप्ति के लिए [**सदा**] हमेशा [**तत्तिदयरदा**] उन तीनों में लीन [**होह**] होओ।। 57 ॥

टीकार्थ : तम्हा तत्तिदयरदा इसलिए उन तीनों में लीन, दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप में रत, किस प्रयोजन के लिए? **तल्लद्धीए** उस रत्नत्रय की लब्धि अथवा उस परम पद की लब्धि। **सदा होह** आप को सर्वदा होवे। किसलिए? **जम्हा** इसलिए कि **चेदा झाणरहधुरंधरो हवे** आत्मा ध्यानरथ धुरंधर होता है। कैसा होता हुआ? **तवसुदवदवं** तप-श्रुत और व्रतवान्।

भावार्थ : ध्यान रूपी रथ की धुरा को धारण करने में वही आत्मा समर्थ होता है, जो तप-श्रुत और व्रत को धारण करता है। इसलिए उस ध्यान को प्राप्त करने के लिए उन तीनों में [तप-श्रुत एवं व्रत] में तुम लीन होओ।। 57 ॥

पाठभेद : तत्तिदयरदा = तत्तियणिरदा ।। 57 ॥

विशेष : उत्थानिका अशुद्ध प्रतीत होती है। उत्थानिकार्थ में उत्थानिका के केवल भावार्थ ही ग्रहण किया गया है।। 57 ॥ [**सम्पादक**]

●—●—●

उत्थानिका : ग्रंथकार औद्धत्यपरिहारं कुर्वन्नाह –

गाथा : **दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।**
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं।। 58 ।।

टीका : **सोधयंतु** शुद्धं कुर्वन्तु, के ते? **मुणिणाहा** मुनिनाथाः, किं तत्? **दव्वसंगहमिणं** द्रव्यसंग्रहमिमं, किं विशिष्टः? **दोससंचयचुदा** रागद्वेषादिदोषसंघातच्युताः वचन गोचराः।

उत्थानिका : ग्रंथकार आत्मगर्व का परिहार करते हुए कहते हैं कि –

गाथार्थ : [**तणुसुत्तधरेण**] अल्प श्रुतज्ञान के धारी [**णेमिचंदमुणिणा**] नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा [**जं**] जो [**इणं**] यह [**दव्वसंगहं**] द्रव्यसंग्रह [**भणियं**] कहा है, उसे [**सुदपुण्णा**] शास्त्रों के ज्ञाता [**दोससंचयचुदा**] समस्त दोषों से रहित [**मुणिणाहा**] मुनि राज [**सोधयंतु**] शुद्ध करें।। 58 ।।

टीकार्थ : **सोधयंतु** शुद्ध करें। कौन करें? **मुणिणाहा** मुनिनाथ, किस का? **दव्वसंगहमिणं** इस द्रव्यसंग्रह को, कैसा है? वे शोधनकर्ता? **दोससंचयचुदा** राग द्वेषादि दोष समूह से विरहित, वचन गोचर हैं।

सूचना : टीका अपूर्ण है, अतः मैं यह टीका स्वयं लिख रहा हूँ – [**सम्पादक**]

अल्पश्रुतधर-नेमिचन्द्रमुनिना कथितं इदं द्रव्यसंग्रहग्रंथं श्रुतपूर्णाः, दोषसंचयच्युताः, मुनिनाथाः शोधयन्तु।

अर्थ : अल्पश्रुतधर नेमिचन्द्र मुनि के द्वारा कथित इस द्रव्यसंग्रह ग्रंथ का श्रुतपूर्ण, दोषसंचय से रहित, मुनिनाथ शोधन करें।

भावार्थ : अल्पज्ञानी नेमिचन्द्र मुनिराज ने जो यह द्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथ लिखा है, उस का संशोधन श्रुतज्ञान से संपन्न, दोषों से विरहित, मुनिराज करें।। 58 ।।

।। लिपिकार कृत प्रशस्ति ।।

इति द्रव्यसंग्रहटीकावचूरि सम्पूर्णः। संवत् 1721 वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचमी दिवसे पुस्तिका लिखापितं सा. कल्याणदासेन।

इति।।

इस प्रकार द्रव्यसंग्रह की अवचूरि टीका पूर्ण हुई। संवत् 1721 में चैत्रमास के शुक्लपक्ष में पंचमी तिथि के दिन यह पुस्तक कल्याणदास के द्वारा लिखी गई।

।। श्री ।।

तत्त्वज्ञान से हान-उपादान और उपेक्षा के भाव मन में भर देता है। इस से हिताहित का विवेक जागृत होता है, तनावजन्य अवस्था समाप्त होती है, संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति होती है, कषायें शान्त हो जाती हैं, वासनाएं विलीन होने लगती है, आत्मा को तुष्टि और पुष्टि मिलती है तथा जीवन में परम सन्तोष प्राप्त होता है। अतः तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए मुमुक्षु को सदैव सत्प्रयत्न करना चाहिये।

— मुनि सुविधिसागर

परिशिष्ट - 1

दव्वसंगह की अकारादि क्रम से गाथासूची

गाथा	गाथा संख्या
अज्जीवो पुण णेओ	15
अट्ठचदुणाणदंसण	6
अणुगुरुदेहपमाणो	10
अवगासदाणजोग्गं	19
असुहादो विणिवित्ती	45
आसवदि जेण कम्मं	29
आसव–बंधण--संवर	28
उवओगो दुवियप्पो	4
एयपदेसो वि अणू	26
एवं छब्भेयमिदं	22
गइपरिणयाण धम्मो	17
चेदणपरिणामो सो	34
जह कालेण तवेण य	36
जावदियं आयासं	27
जीवमजीवं दव्वं	1
जीवादी सद्दहणं	41
जीवो उवओगमओ	2
जो रयणत्तयजुत्तो	53
जं किंचिवि चिंतंतो	55
जं सामण्णं गहणं	43
ठाणजुदाण अधम्मो	18
णट्ठ चदुघाइकम्मो	50
णट्ठट्ठकम्मदेहो	51
णाणावरणादीणं	31
णाणं अट्ठवियप्पं	5
णिक्कम्मा अट्ठगुणा	14
तवसुदवदवं चेदा	57
तिक्काले चदुपाणा	3
दव्वपरिवट्टरूवो	21
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा	58
दुविहं पि मोक्खहेउं	47
दंसणणाणपहाणे	52
दंसणणाणसमग्गं	54
दंसणपुव्वं णाणं	44
धम्माधम्मा कालो	20
पणतीससोलछप्पण	49
पयडिट्ठिदि अणुभाग	33
पुग्गलकम्मादीणं	8
पुढविजलतेउवाऊ	11
बज्झदि कम्मं जेण दु	32
बहिरब्भंतरकिरिया	46
मग्गणगुणठाणेहि य	13
मा चिट्ठह मा जंपह	56
मा मुज्झह मा रज्जह	48
मिच्छत्ताविरदिपमाद	30
रयणत्तयं ण वट्टइ	40
लोयायासपदेसे	22
वण्णरस पंच गंधा	7
वदसमिदीगुत्तीओ	35
ववहारा सुहदुक्खं	9
सद्दो बंधो सुहुमो	16
समणा अमणा णेया	12
सव्वस्स कम्मणो जो	37
सुहअसुहभावजुत्ता	38
संति जदो तेणेदे	24
सम्मद्दंसण णाणं	39
संसयविमोहविब्भम	42
होंति असंखा जीवे	25

परिशिष्ट - 2

द्रव्यसंग्रह के कर्त्ता आचार्य नेमिचन्द्र कौन हैं?

– पण्डित गोकुलचन्द जी जैन

द्रव्यसंग्रह की अन्तिम गाथा में ग्रन्थकार का नाम नेमिचन्द्र मुनि आया है। गाथा इस प्रकार है –

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥

तिलोयसारो या त्रिलोकसार के अन्त में निम्नलिखित गाथा उपलब्ध है –

इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिसिस्सेण।
रइओ तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया॥

द्रव्यसंग्रह और त्रिलोकसार की उक्त गाथाओं से स्पष्ट है कि दोनों ग्रन्थ एक ही नेमिचन्द्र द्वारा निबद्ध हैं। दोनों में वे अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए स्वयं को अल्पश्रुतधर कहते हैं। द्रव्यसंग्रह में वे पूर्णश्रुतधारी मुनिनाथों से द्रव्यसंग्रह को संशोधित कर लेने की प्रार्थना करते हैं और त्रिलोकसार में बहुश्रुत आचार्यों से क्षमायाचना करते हैं। त्रिलोकसार में नेमिचन्द्र ने अपने को अभयनन्दि का शिष्य कहा है। उक्त ग्रन्थों की तरह लब्धिसार में भी 'अप्पसुदेण णेमिचंदेण' (गाथा 648) पद आया है।

गोम्मटसार नाम से प्रसिद्ध 'गोम्मटसंगहसुत्त' में अनेक गाथाओं में ग्रन्थकर्ता नेमिचन्द्र और उन के गुरुजन आदि का उल्लेख है। इसी ग्रन्थ में वह बहुचर्चित गाथा है, जिस के आधार पर नेमिचन्द्र को सिद्धान्तचक्रवर्ती अभिहित किया जाता है। गाथा इस प्रकार है –

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइ-चक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥

[गोम्मटसारकर्मकाण्ड, गाथा-397]

द्रव्यसंग्रह या दव्वसंगहो, त्रिलोकसार या तिलोयसारो तथा गोम्मटसार या गोम्मटसंगहसुत्तं एक ही नेमिचन्द्र द्वारा निबद्ध माने जाते रहे हैं; किन्तु ब्रह्मदेवकृत

संस्कृत टीका के प्रकाशन के बाद टीका के सन्दर्भों के आधार पर द्रव्यसंग्रहकार को त्रिलोकसार आदि के कर्त्ता से भिन्न सिद्ध करने की शुरूआत हुई। अलग गुरु-शिष्य परम्परा का भी अनुमान किया गया, यहाँ तक कि 'तणुसुत्तधर' का अर्थ आंशिक श्रुतज्ञान का धारक न कर के 'अल्पज्ञ' अर्थ किया गया है। यहाँ इस विषय पर विस्तार से विचार करना उपयुक्त नहीं है, तथापि इस भ्रम के मूल कारण पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है।

द्रव्यसंग्रह के संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव ने टीका के प्रस्तावना वाक्य में लिखा है कि नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने मालवा के धारा नगर के अधिपति भोजदेव के श्रीपाल नामक मंडलेश्वर के आश्रम नगर में मुनिसुव्रत चैत्यालय में सोम नामक राजश्रेष्ठी के निमित्त पहले 26 गाथाओं का लघु द्रव्यसंग्रह बनाया बाद में विशेष तत्त्वज्ञान के लिए बृहद् द्रव्यसंग्रह की रचना की।

ब्रह्मदेव ने अपनी इस जानकारी का कोई आधार नहीं दिया। 26 गाथाओं को लघुद्रव्यसंग्रह तथा 58 गाथाओं को बृहद्द्रव्यसंग्रह नाम भी ब्रह्मदेव का दिया हुआ है। लघुद्रव्यसंग्रह के नाम से वर्तमान में प्रचलित कृति के विषय में निम्नलिखित तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य हैं -

1. ग्रन्थकार ने इसे लघुद्रव्यसंग्रह या द्रव्यसंग्रह नाम न देकर 'पयत्थलक्खण' कहा है।

2. इस की उपसंहार गाथा इस प्रकार है -

   सोमच्छलेण रइया पयत्थलक्खणकराउ गाहाओ।
   भव्वुवयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण॥

   इस गाथा में ग्रन्थ के नाम के साथ इस के कर्त्ता को नेमिचन्द्र गणि बताया गया है और 'सोमच्छलेण' पद के द्वारा सोमश्रेष्ठी का भी उल्लेख है।

3. इस ग्रन्थ की गाथाओं में से मात्र दो गाथाएँ (12, 14) पूरी तथा चार (8-11) का पूर्वार्ध 58 गाथाओं वाले द्रव्यसंग्रह की गाथाओं से मिलता है। शेष सभी गाथाएँ भिन्न हैं।

4. द्रव्यसंग्रह पर लिखी ब्रह्मदेव की वृत्ति विद्वत्तापूर्ण है, किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि द्रव्यसंग्रह को सोमश्रेष्ठी के निमित्त लिखे जाने का भ्रम 26 गाथाओं वाले नेमिचन्द्र गणि के 'पदार्थलक्षण' की उपर्युक्त गाथा से उत्पन्न होता है। दोनों की गाथाओं तथा ग्रन्थकर्त्ता को एक व्यक्ति

मान लेने पर ब्रह्मदेव द्वारा नेमिचन्द्र गणि के विषय में ज्ञात सूचनाओं को द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र के साथ भी जोड़ दिया गया हो तो आश्चर्य की बात नहीं।

5. इस सन्दर्भ में यह भी महत्त्वपूर्ण है कि द्रव्यसंग्रह पर लिखी प्रभाचन्द्र की प्रस्तुत संस्कृत अवचूरि में ब्रह्मदेव की वृत्ति की तरह कोई भी उल्लेख नहीं है।

6. ब्रह्मदेव की टीका के आधार पर द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र के विषय में विचार करने वाले विद्वानों ने त्रिलोकसार तथा लब्धिसार के ऊपर उद्धृत सन्दर्भों को सर्वथा छोड़ दिया है।

7. वसुनन्दि द्वारा उल्लिखित नेमिचन्द्र को नाम साम्य के कारण द्रव्यसंग्रह का कर्त्ता मान लेने का सुझाव प्रमाणों के अभाव में स्वीकार्य नहीं हो सकता। दोनों की गुरु परम्परा भिन्न है। वसुनन्दि द्वारा उल्लिखित नेमिचन्द्र के गुरु नयनन्दि हैं तथा त्रिलोकसार के उल्लेख के अनुसार द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र अभयनन्दि के शिष्य हैं। इसी प्रकार अपभ्रंश **सुदंसणचरिउ** के रचयिता नयनन्दि माणिक्यनन्दि के शिष्य हैं तथा वसुनन्दि द्वारा उल्लिखित नयनन्दि श्रीनन्दि के शिष्य हैं। वसुनन्दि कृत प्राकृत **उवासयाज्झयणं** तथा नयनन्दि कृत अपभ्रंश **सुदंसणचरिउ** में प्रशस्तियाँ उपलब्ध हैं। इसलिए उन के विवरणों में किसी प्रकार के विवाद की स्थिति नहीं है।

8. ब्रह्मदेव की टीका में नेमिचन्द्र को जहाँ सिद्धान्तिदेव कहा है, वहीं अनेक स्थलों पर उन्हें 'भगवन्' जैसे पदों से भी सम्बोधित किया है। पारम्परिक सिद्धान्तों के संरक्षण के लिए विशेषरूप से प्रयत्नशील आचार्यों के लिए प्रयुक्त 'सिद्धान्तिदेव' एक गरिमामय अभिधान है।

9. द्रव्यसंग्रह अवचूरि में नेमिचन्द्र को महामुनि सिद्धान्तिक कहा गया है।

10. उक्त तथ्यों के आलोक में यह कहना उपयुक्त होगा कि द्रव्यसंग्रह के कर्त्ता, समय, स्थान, गुरु-शिष्य परम्परा के विषय में ब्रह्मदेव के विवरण के समर्थक अन्य पुष्ट प्रमाण जब तक उपलब्ध नहीं हो जाते तब तक ऐसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक विषयों पर कल्पना और अनुमान के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करना उचित नहीं है। द्रव्यसंग्रह और त्रिलोकसार के रचयिता को एक मानने का स्पष्ट आधार उपलब्ध है ही।

11. ब्रह्मदेव की टीका के विषय में श्री एस. सी. घोषाल ने द्रव्यसंग्रह की अपनी अंग्रेजी प्रस्तावना में विचार करने के बाद लिखा है –

"Thus it is clear that the commentator, Brahmadeva, was born several centuries after Nemichandra. Consequently, the statement which he makes about the composition of works by Nemichandra must be read with caution and accepted only when the same are confirmed by other proofs. Keeping this fact in view, we are not inclined to accept without any further evidence, the statement made by Brahmadeva.

इस प्रकार द्रव्यसंग्रह तथा त्रिलोकसार आदि के कर्ता एक ही नेमिचन्द्र हैं, यह मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। नेमिचन्द्र का समय उन के ग्रन्थों, शिलालेखों तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर शक संवत् 900 ईस्वी सन् 978 निश्चित किया गया है। वे गंगवंशी राजा रायमल्ल के प्रधान सेनापति चामुण्डराय के गुरु थे। विशेष विवरण के लिए गोम्मटसार आदि की प्रस्तावना द्रष्टव्य है।

नेमिचन्द्र मुनि

लेखक : नेमिचन्द जैन

अभी तक यह धारणा चली आ रही थी कि द्रव्यसंग्रह या बृहद्द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती हैं। पर अब नये प्रमाणों के आलोक में यह मान्यता परिवर्तित हो गयी है। अब समीक्षक विद्वानों का अभिमत है कि द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती से भिन्न अन्य कोई नेमिचन्द्र हैं, जिन्हें नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव या नेमिचन्द्रमुनि कहा गया है। बृहद्द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव ने ग्रन्थ का परिचय देते हुए लिखा है –

"अथ मालवदेशे धारानामनगराधिपति राजभोजदेवाभिधानकलिकालचक्रवर्तिसम्बन्धिनः श्रीपालमण्डलेश्वरस्य सम्बन्धिन्याश्रमनामनगरे श्रीमुनिसुव्रततीर्थंकरचैत्यालये शुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादविपरीतनारकादिदुःखभयभीतस्य परमात्मभावनोत्पन्नसुखसुधारसपिपासितस्य भेदाभेदरत्नत्रयभावनाप्रियस्य भव्यवरपुण्डरीकस्य भाण्डागाराद्यनेकनियोगाधिकारिसोमाभिधानराजश्रेष्ठिनो निमित्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवैः पूर्वं षड्विंशतिगाथाभिर्लघुद्रव्यसंग्रहं कृत्वा पश्चाद्विशेषतत्त्वपरिज्ञानार्थं विरचितस्य बृहद्द्रव्यसंग्रह-

स्याधिकारशुद्धिपूर्वकत्वेन वृत्तिः प्रारभ्यते।''

मालवदेश में धारानगरी का स्वामी कलिकालसर्वज्ञ राजा भोजदेव था। उस से सम्बद्ध मण्डलेश्वर श्रीपाल के आश्रम नामक नगर में श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के चैत्यालय में भाण्डागार आदि अनेक नियोगों के अधिकारी सोमनामक राजश्रेष्ठि के लिए श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने पहले 26 गाथाओं के द्वारा लघुद्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ रचा। पीछे विशेषतत्त्वों के ज्ञान के लिये बृहद्द्रव्यसंग्रह नामक ग्रन्थ रचा। उस की वृत्ति को मैं प्रारम्भ करता हूँ।

इस उद्धरण से स्पष्ट है बृहद्द्रव्यसंग्रह और लघुद्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव हैं।

श्री डॉ. दरबारीलालजी कोठिया ने द्रव्यसंग्रह की प्रस्तावना में नेमिचन्द्र नाम के विद्वानों का उल्लेख किया है। इन के मतानुसार प्रथम नेमिचन्द्र गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार और क्षपणासार जैसे सिद्धान्तग्रन्थों के रचयिता हैं। इन की उपाधि सिद्धान्तचक्रवर्ती थी और गंगवंशी राजा रायमल्ल के प्रधान सेनापति चामुण्डराय के गुरु भी थे। इन का अस्तित्वकाल वि. 1035 या ई. सन् 978 के पश्चात् है।

द्वितीय नेमिचन्द्र वे हैं, जिन का उल्लेख वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव ने अपने उपासकाध्ययन में किया है और जिन्हें जिनागमरूप समुद्र की वेलातरंगों से धुले हृदय वाला तथा सम्पूर्ण जगत में विख्यात लिखा है –

सिस्सो तस्स जिणागम-जलणिहि-वेलातरंग-धोयमणो।
संजाओ सयल-जए विक्खाओ णेमिचंदु त्ति॥
तस्स पसाएण मए आइरिय - परंपरागयं सत्थं।
वच्छल्लयाए रइयं भवियाणमुवासयज्झयणं॥

इन नेमिचन्द्र के नयनन्दि गुरु थे और वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव शिष्य।

तृतीय नेमिचन्द्र वे हैं जिन्होंने सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र के गोम्मटसार पर जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम की संस्कृत-टीका लिखी थी। यह टीका अभयचन्द्र की मन्दप्रबोधिका और केशववर्णी की संस्कृत मिश्रित कन्नड़ टीका के आधार पर रची गयी है।

चतुर्थ नेमिचन्द्र सम्भवतः द्रव्यसंग्रह के रचयिता हैं। अतएव प्रथम और तृतीय नेमिचन्द्र को तो एक नहीं कह सकते। ये दोनों दो व्यक्ति हैं।

सिद्धान्तिचक्रवर्ती मूलग्रन्थकार हैं और तृतीय नेमिचन्द्र टीकाकार हैं। प्रथम नेमिचन्द्र का समय वि. की 11वीं (ई. स. 11) शताब्दी है और तृतीय का ई. सन् की 16वीं शताब्दी। अतः इन दोनों नेमिचन्द्रों के पौर्वापर्यय में 500 वर्षों का अन्तराल है। इसी प्रकार प्रथम और द्वितीय नेमिचन्द्र भी एक नहीं हैं। प्रथम नेमिचन्द्र वि. की 11वीं शताब्दी में हुए हैं तो द्वितीय उन से 100 वर्ष बाद वि. की 12वीं शताब्दी में, क्योंकि द्वितीय नेमिचन्द्र वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव के गुरु थे और वसुनन्दि का समय वि. सं. 1150 के लगभग है। इन दोनों नेमिचन्द्रों की उपाधियाँ भी भिन्न हैं। प्रथम की उपाधि सिद्धान्तचक्रवर्ती है, तो द्वितीय की सिद्धान्तिदेव।

प्रथम और चतुर्थ नेमिचन्द्र भी भिन्न हैं। प्रथम अपने को सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं, तो चतुर्थ अपने को 'तनुसूत्रधर'। बृहद्द्रव्यसंग्रह के संस्कृत टीकाकार ब्रह्मदेव ने द्रव्यसंग्रहकार को सिद्धान्तिदेव लिखा है, सिद्धान्तचक्रवर्ती नहीं। अतएव हमारी दृष्टि में द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव हैं। पण्डित आशाधर जी ने वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव का सागारधर्मामृत और अनगारधर्मामृत दोनों ही टीकाओं में उल्लेख किया है और वसुनन्दि ने इन सिद्धान्तिदेव का अपने गुरु के रूप में स्मरण किया है तथा इन्हें श्रीनन्दि का प्रशिष्य एवं नयनन्दि का शिष्य बतलाया है। ये नयनन्दि यदि 'सुदंसणचरिउ' के रचयिता हैं, जिसकी रचना उन्होंने भोजदेव के राज्यकाल में वि. सं. 1100 में की थी, तो नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव नयनन्दि से कुछ ही उत्तरवर्ती और वसुनन्दि से कुछ पूर्ववर्ती, अर्थात् वि. सं. 1125 के लगभग के विद्वान सिद्ध होते हैं। पंडित आशाधर जी ने द्रव्यसंग्रहकार नेमिचन्द्र का उल्लेख किया है। अतएव वसुनन्दि सिद्धान्तिदेव के गुरु द्रव्यसंग्रह के रचयिता नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ही होंगे।

❑

सुविधि ज्ञान चन्द्रिका प्रकाशन संस्था के उपलब्ध प्रकाशन

विधान साहित्य

1. कल्याण मन्दिर विधान [तृतीय संस्करण] 17 रु.
2. भक्तामर विधान [द्वितीय संस्करण] 18 रु.
3. रविव्रत विधान 13 रु.
4. रोटतीज व्रत विधान 11 रु.
5. जिनगुणसंपत्ति व्रत विधान [द्वितीय संस्करण] 18 रु.
6. श्रुतस्कन्ध विधान 15 रु.

प्रवचन साहित्य

1. धर्म और संस्कृति 5 रु.
2. कैद में फँसी है आत्मा 5 रु.
3. ए बे-लगाम के घोड़े! सावधान 75 रु.
4. स्मरण शक्ति का विकास कैसे करें? 11 रु.
5. रहस्यों का भण्डार : महामन्त्र णमोकार 15 रु.

अनुवादित साहित्य

1. सम्बोध पंचासिका 12 रु.
2. रत्नमाला 25 रु.
3. प्रमाण प्रमेय कलिका 21 रु.
4. ज्ञानांकुशम् 30 रु.
5. दव्वसंगह 30 रु.
6. वैराग्यसार 15 रु.
7. मिथ्यात्व निषेध 16 रु.

क्रीड़ा साहित्य

1. आध्यात्मिक क्रीड़ालय [6 खेलों का समुदाय] 35 रु.
2. ज्ञाननिधि क्रीड़ालय 35 रु.

गीत और मुक्तक साहित्य

1. सुविधि मुक्तक मणिमाला [भाग-1] 5 रु.
2. सुविधि गीत मालिका 25 रु.